नरसिंह कथा

लक्ष्मीनारायण लाल

नरसिंह कथा
(रंगभूमि-नाटक)

नरसिंह कथा

(रंगभूमि-नाटक)

•

लक्ष्मीनारायण लाल

•

लोकभारती प्रकाशन

१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद-१ द्वारा प्रकाशित
●
© लक्ष्मीनारायण लाल
●
संस्करण : १९८७
●
लोकभारती प्रेस
१८, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद-१ द्वारा मुद्रित

मूल्य : २०.००

भूमिका

"नरसिंह कथा" नाटक की रचना सन् १९७५ में की थी। उसी के आस-पास यह प्रकाशित हुआ। यह मेरा पहला ऐसा नाटक था, जो रंग-भूमि पर प्रस्तुत होने से पूर्व ही प्रकाशित हो गया। वे आपातकाल के दिन थे। कई रंगसंस्थाओं ने इसे तब खेलना चाहा, पर खेल नहीं सके। आपातकाल के बाद यह खेला गया। तब यह कश्मीर युनिवर्सिटी, श्रीनगर के हिन्दी एम० ए० कक्षा के पाठ्यक्रम में था। इसका जब वह प्रकाशित प्रथम, प्रारूप खेला गया। उससे मुझे घोर असंतोष हुआ।

सन् १९८० से १९८३ के बीच इस पर नये सिरे से फिर काम किया। सन् १९८४ में बम्बई में खेले जाने की तैयारी हुई। उससे जुड़ा रहकर मैंने फिर अनुभव किया कि इस पर नये सिरे से—एक बार और काम करने की अनिवार्यता है। नाट्य रचना मेरे लिए किसी भी तरह साधन नहीं है, साध्य है अपने आप में। इसीलिए मेरी किन्हीं नाट्य कृतियों के कई प्रारूप आपको मिलते हैं। आपको स्वयं ढूंढकर उनके अन्तिम प्रारूप को प्राप्त करना होगा।

"नरसिंह कथा" नाटक का यह अन्तिम प्रारूप है।

सन् १९७६ के आस-पास जब मैंने "व्यक्तिगत" नाटक के अनेक निर्देशकों की प्रस्तुतियों के बाद स्वयं उसका निर्देशन किया और स्वयं "मैं" की भूमिका की, तब से विशेषकर मैं अपनी रंग प्रकृति की चिंता से बड़ी गहराई के साथ जुड़ गया। वह चिंता मुझे जहाँ ले गई—या उसके

कारण जहाँ मेरा प्रवेश हुआ, वहाँ "मंच" मुझे झूठ सिद्ध हुआ। "मंच" आधुनिकतावाद का है। मंच राजनीतिक मंच का ही है। अपने नाट्य से मंच की अवधारणा बिल्कुल ही उल्टी है। मंच "थियेटर" का भ्रष्ट भ्रममात्र है।

अपने "नाट्य" अपने "रंग" का अधिष्ठान तो "भूमि" है—यह अनुभव पकड़ में आया। फिर तो इस रंगभूमि ने मुझे धर्मभूमि के धर्म से जोड़ दिया। जुड़ते ही मेरे सामने स्पष्ट होने लगा कि जो रंगभूमि के धर्म को जानना चाहता है, उसे "ड्रामा" "थियेटर" सम्प्रदाय से ऊपर उठना होगा। जैसे सम्प्रदाय धर्म नहीं, वैसे पश्चिम का थियेटर सम्प्रदाय, धर्म नहीं। जैसे जो मुझे जानना चाहे उसे मेरी देह के पार और मेरे अतीत को देखना होगा। जो मेरी देह पर ही रुक जायेगा, वह मुझ तक नहीं पहुँच सकता। मैं अपने शरीर में हूँ, पर शरीर नहीं हूँ। ऐसा ही सम्प्रदायों के साथ है। पश्चिम का "थियेटर" "ड्रामा" पश्चिम के लिए धर्म है, पर भारत या पूरे पूरबी देशों के लिए सम्प्रदाय है। वह सब शरीर है।

भारतवर्ष का रंग, धर्म है। जैसे पश्चिम का "थियेटर" उनका धर्म है। पर एक का धर्म दूसरे के लिए सम्प्रदाय हो जाता है, रंग के क्षेत्र में आधुनिक भारतीय इसे क्यों नहीं समझते ? इसका मूल कारण भी वही है। हमारे लिए आधुनिकता थियेटर सम्प्रदाय का सम्प्रदाय है।

धर्म अजन्मा है। पर सम्प्रदाय का जन्म होता है। जिसका जन्म नहीं होता, वही अमृत है। हमारे रंग, नाट्य की जन्म-कथा प्रसिद्ध है।

पंचम वेद की सृष्टि करके ब्रह्मा ने इन्द्र से कहा कि मैंने इतिहास की रचना कर दी। जो देवता चतुर और परिश्रमी हों उनके द्वारा इसका अभिनय किया जाना चाहिए। इन्द्र ने कहा देवता नाट्यकर्म में अक्षम हैं। तब ब्रह्मा ने भरत मुनि को उनके सौ पुत्रों के सहित इस कार्य के लिये नियुक्त किया। भरत मुनि ने प्रथमतः भारती, सात्वती और आरभटी वृत्तियों से युक्त अभिनय की तैयारी की, पर जब ब्रह्मा ने कैशिकी वृत्ति की योजना

की आवश्यकता बतलाई तो भरत मुनि ने अप्सराओं की माँग की। ब्रह्मा ने कैशिकी वृत्ति के लिए उपयुक्त अप्सराएँ भरत मुनि को प्रदान कीं। गायन के कार्य के लिए नारदादि गन्धर्वों की योजना की गई। इतनी तैयारी के पश्चात् इन्द्रध्वज के उत्सव के समय सुरविजय नाटक का अभिनय किया गया। देवताओं ने अभिनय से प्रसन्न होकर भरत मुनि और उनके पुत्रों को अनेकों उपहार प्रदान किए। परन्तु क्योंकि इस नाटक में दानवों की पराजय प्रदर्शित की गई थी, अतएव उन्होंने अपनी अप्रसन्नता प्रकट की और अभिनय में विघ्न उत्पन्न करने आरम्भ कर दिए। इस पर इन्द्र ने क्रुद्ध होकर ध्वज को लेकर उसकी मार से असुरों के शरीरों को जर्जर कर दिया। इस प्रकार ध्वज से ही जर्जर की उत्पत्ति हुई। पर विघ्न फिर भी बने रहे। तब ब्रह्मा ने विश्वकर्मा को नाट्यगृह बनाने का आदेश दिया। विश्वकर्मा ने नाट्यघर की रचना की और उसमें नाटक की रक्षा करने के लिए सब देवता यथास्थान नियुक्त कर दिये गए।

इस कथा के एक-एक शब्द की व्यंजना है। इस पूरी व्यंजना या प्रतीकार्थ से जो सत्य प्रकट है, आधुनिक काल में इस सत्य का न दिखना, न पकड़ पाना, न हमें बोध होना, बहुत ही घातक हो गया। मृत सम्प्रदाय-रूपी "मार्डन थियेटर" का बोध हमें इतना निर्भार और निर्दोष नहीं होने देता कि हम अपनी रंगभूमि, नाट्य (धर्म) से परिचित हो सकें। मृत ड्रामा और थियेटर को मृत देहें, लाशें और उनका अम्बार हमें अपने नाट्य की आत्मा को अनुभूत करने, जानने और जीने में भयंकर अवरोध बना है।

इतने लम्बे अरसे से तथाकथित 'आधुनिक रंगमंच' क्षेत्र में काम करते हुए तमाम कलाकारों और प्रतिभाओं के शीघ्र उदय और त्वरित अन्त को देखकर प्रायः अपने आपसे प्रश्न करता रहा कि इन प्रतिभाओं और रंग कलाकारों की प्रेरणाभूमि क्या है ? और कहाँ है ? इनके कर्म और सरोकार

के पीछे क्या कोई श्रद्धा है ? और श्रद्धा से भी गहरे क्या इनका कोई अपना विश्वास भी है, जहाँ इनका मनोबल अपना आधार पा सके ? जहाँ इनके कर्म कोई ठिकाना पा सकें ? उत्तर में घुमा फिराकर वही पश्चिम का थियेटर। भाषा चाहे कितनी समन्वयवाद की क्यों न हो। और पूरब-पश्चिम का समन्वयवाद जिसे मेरे पूज्य मित्र प्रोफेसर शरन ने "नीलकंठ-वाद" नाम दिया है, अपने सम्पूर्ण अर्थों में भारत के लिए हर क्षेत्र में विनाशकारी सिद्ध हुआ है।

पश्चिम का ड्रामा, मार्डन थियेटर जिसका आत्मघाती अनुवाद हमने "आधुनिक रंगमंच" कर रखा था, और जिसे लेकर हम फूले न समाते थे, एक दिन बात पकड़ में आई कि ये सारा आधुनिक रंगमंच इसकी मूल अवधारणा ही गलत है। भारतवर्ष में नाट्योत्थान के नाम पर "नेशनल स्कूल आफ ड्रामा" से लेकर सारे आधुनिक नाट्य दल तक "रिसन" के सिद्धान्त पर इसका सारा नियोजन हुआ और अब तक हो रहा है। नीचे हमारी "भूमि" खिसक रही है, ऊपर हवा में "रंग" का भ्रम बढ़ता चला जा रहा है।

जैसे पश्चिमी आर्थिक विकास उपनिवेशों के साधनों के दोहन से हुआ, ठीक उसी परम्परा में, उसी परम्परा से विकसित तथाकथित आधुनिक भारतीय रंगमंच आन्दोलन ने—हाँ, आन्दोलन ही कहना पड़ेगा, इसने पहले तो लोगों को अपनी जातीय, भूमीय संसाधनों से बेगाना किया, यानी यह सिद्ध किया कि सारे नाट्य साधन सरकारी हैं। सारे सरकारी, अर्द्धसरकारी संस्थानों, प्रचार-प्रसार के साधनों से यह सिद्ध किया गया कि सरकार उनकी मालिक है। लोगों का काम तो जैसा 'वह' कहे, उनका इस्तेमाल करना है। लोगों को अपनी "भूमि" से उखाड़ने की यह प्रक्रिया आज अंग्रेजी राज्य से भी बदतर है। संसाधनों और लोगों के प्रति उपनिवेशी रवैया ही जैसे वर्तमान राज्य की सांस्कृतिक दृष्टि है।

इन्हीं संकटपूर्ण समय में जिस क्षण मेरा चित्त "मंच" से "भूमि" पर

उतरा और रंग से जुड़कर रंगभूमि बना—"रंगभूमि"—मुझे अनुभूत हुआ आज मुझे अपने देश का सबसे अधिक प्रभावशाली, अर्थवान शब्द पुनः प्राप्त हुआ।

प्रत्यक्ष देखा, रंग, मंच पर नहीं होता। मंच पर तो रंग लीपा-पोता जाता है। रंग भूमि की ही प्रकृति है। भूमि ही रंग है। तभी तो कोई निर्माण कर्म शुरू करने से पहले हमारे यहाँ भूमि पूजन अनिवार्य है। हमारे ही पुरखों ने सुबह उठते हुए भूमि को पाँव से छूने की क्षमा प्रार्थना की है। यही जीवनदृष्टि हमारी रंगभूमि दृष्टि है। जहाँ कथा श्रद्धा है, विश्वास, पात्र है, वहीं हमारा लोकचित्त है।

"नरसिंह कथा" नाट्य उसी "कथा" और "पात्र" को देखने का एक विनम्र प्रयास है। जो अपना है, वह चाहे जैसा है, अपना ही है, जैसे अपना प्राण, जो दूसरे से अतुलनीय है। जो अपना है वही प्रह्लाद—आह्लाद शक्ति-स्रोत है, जिसे कोई नहीं मार सकता। पर शर्त है अपने आप पर विश्वास और उस विश्वास का साधन अपने कर्म पर अटूट श्रद्धा।

अपनी रंगभूमि के नाटक में कथा ही मूल है और जीवन-अनुभव, उस कथा का रस है। तभी मेरे चित्त में कथा श्रद्धा का प्रतीक है और कथा में आए हुए पात्र, विश्वास पात्र हैं, जिनमें कथा कथा का रस भरता है। रंगभूमि पर खेले गए नरसिंह कथा का संप्रेषण सार्वजनिक और सामाजिक होगा, यह सर्वजन और समाज के लिए है, केवल व्यक्ति के लिए नहीं, इसे हर क्षण निर्देशक-अभिनेता को याद रखना होगा। ड्रामा-थियेटर, दूरदर्शन फिल्म की "अपील" "प्राइवेट" है ठीक इनके विपरीत नरसिंह कथा का संप्रेषण सार्वजनिक-सामाजिक है।

अपनी ही देह में अपनी आत्मा की कल्पना है। इसी की अवधारणा और रंग प्रतिष्ठा का प्रयास यहाँ प्रस्तुत है।

नई दिल्ली
१० अगस्त, ८६

—लक्ष्मीनारायण लाल

पात्र

•

जय
विजय
प्रह्लाद
वज्रदंत
हिरण्यकशिपु
हुतासन
शुक्राचार्य
महारक्षक
सैनिक
कयाधू (भगवती)
नर्तकी और कुछ लोग

पहला अंक

[रंगभूमि प्रकाशित है। मध्य में नगाड़ा रखा हुआ है। एक वादक आकर नगाड़ा बजाने लगता है। मंच पर सारे पात्रों का आना।]

(गायन)

जयति जय शब्द अर्थ दाता।
जयति जय रंगभूमि माता॥

जय : कौन है कार्य-कारक कथा में ?
विजय : कौन है मर्म पालक कथा में ?
दोनों : सुनो भयभीत मत हो
सुमंगल गीत गाओ।
करो अभिनय अभय का
जयति नरसिंह पाओ॥

[नगाड़ा वादन]

जय : जहाँ तक समय की बात है।
ये कथा बरसों पुरानी है॥

जब से सूर्य चन्द्र है ।
जब से हवा पानी है ।।

पात्र : सत्ता मद की अपनी प्यास ।
सत्ता भय की अपनी रास ।।

जय : सत्ता मद की जड़ें
कलेजे की गहराई में होती हैं ।
पर उसके फलों का रंग
चेहरों पे झलकता है ।

पात्र : एक ओर हिरण्यकशिपु मदमाता ।
दूजी ओर प्रह्लाद सुभाता ।।

जय : हिरण्यकशिपु मानता, मैं हूँ सर्वशक्तिमान ।

विजय : प्रह्लाद कहता, ये झूठा कालोरात ।

पात्र : सूरज आने पर मिटती रात ।
दिशा दिशा स्वर्णिम प्रभात ।।

[पात्रों का यही गाते हुए जाना । नगाड़ा वादन]

जय : समझते हो हिरण्यकशिपु प्रह्लाद कथा पौराणिक है ।
वे सतयुग के थे, आज नहीं ?

विजय : आज भी हैं वे हमारे बीच ।

जय : दोनों में लड़ाई अब तक जारी है ।

विजय : जहाँ सत्ता-शक्ति की भूख है, वहीं हिरण्यकशिपु का अदृश्य सिंहासन है ।

जय : हाँ, वो रहता हमारी इच्छाओं में ।
साकार होता हमारी कल्पनाओं में ।
उसका झूठ हमारा सत्य ।

विजय : उसने हमारी धार्मिक भावनाओं का राजनीतीकरण किया । हमारी जड़ता अर्थहीनता को ढकने के लिए नये से नया कर्मकांड शुरू किया ।

जय : हमें झूठे विचार दिए
पड़ोसी हमारा शत्रु है
देश की अखंडता संकट में है ।

[नगाड़ा वादन । नगाड़ा लिए हुए वादक का प्रस्थान । पृष्ठभूमि में घुंघरुओं भरे नृत्य के स्वर आने लगते हैं ।]

जय : लोगों का ध्यान बँटाने के लिए सुन्दरियों के नृत्य राजमार्गों पर ।

विजय : ये नर्तकी कौन ?

जय : जो इसके पीछे वो कौन ?

विजय : लगता है प्रह्लाद की तलाश में हम उसके साथी भी ढूंढ़े जा रहे हैं ।

जय : हमें झटपट रूप बदलना होगा ।

विजय : झटपट और बिना कोई खटपट ।

[दोनों एक ओर, एक दूसरे का रूप विन्यास बदलने में—जय ज्योतिषी, विजय योगी—लगते हैं । दूसरी ओर नर्तकी प्रवेश कर नृत्य करने लगती है ।]

विजय : उधर मत देख ।

जय : हाय क्या मुद्रा है ।

[तीनों का देखना]

नर्तकी : कौन ?

विजय : ज्योतिषी । मैं योगी ।

नर्तकी : मेरे ऊपर कब कृपा होगी ? (दोनों परस्पर चुपचाप अभिनय में) आप लोगों ने कहीं प्रह्लाद को देखा है ? सुना है, आप दोनों प्रह्लाद के मित्र हैं, गुरुभाई ।

जय : पहले तू बोल ।

विजय : पहले तू ।

जय : पक्की बात ?

विजय : थोड़ी पक्की, थोड़ी कच्ची ।

जय : लगतो बड़ो सच्चो ।

[विराम]

जय : हे जी, ये प्रह्लाद कौन ?

नर्तकी : आप ज्योतिषी होकर हाय दइया !

जय : मेरा मतलब प्रह्लाद जो था, या जो है, या जो हो रहा है—अर्थात् प्र···प्र···प्रप···प्रपा ।

[दोनों के भागने की चेष्टा । नर्तकी अपने अभिनय-पाश से उन्हें जैसे बांध लेती है ।]

नर्तकी : सच, सच बताइये तभी छोड़ूंगी । ना तुम ज्योतिषी, न तुम योगी । तुम हो जय, तुम विजय ।

जय : सत्यानाश ।

विजय : सर्वनाश ।।

[दोनों नर्तकी के चरणों में । नर्तकी का जाना ।]

जय : अरे ।

विजय : बाप रे ।

जय : नकलो रूप से अब कोई फायदा नहीं । असलियत ही असली है । जय ही असलो है । असलो को कोई डर नहीं । गोलो मारो इस नकलो को ।

विजय : अरे···रे···रे कपड़े मत उतार ।

जय : मैं ज्योतिषी नहीं, जय हूँ । प्रह्लाद का साथी । अब कोई और प्रपंच नहीं । अपनी असलियत को छोड़ते-छोड़ते आज हम यहाँ पहुँच गए कि अपने शत्रु को एक नर्तकी के पैरों पर जा गिरे, छिः । भ्रम ये कि हम हिरण्यकशिपु जैसे शत्रु से लोहा ले रहे हैं और प्रह्लाद के साथ हैं, भ्रुमह्अ्ऽऽ···।

विजय : भावुकता छोड़ो, बुद्धि से देखो ।

जय : अरे बुद्धि ही होता तो ऐसे आततायो—निरंकुश—नास्तिक, झक्की राजा के राज में होते ? बुद्धि हो तो पहले भ्रष्ट को इसने फिर इसके प्रपंचों में विश्वास करते चले गए ।

विजय : धीरे···धीरे बोल ।

जय : मैं ज्योतिषी नहीं । जय हूँ—प्रह्लाद का गुरुभाई ।

विजय : चुप्प । कोई आ रहा है ।

जय : मैं अब असली से नकली नहीं बन सकता । देख लिया फल ।

विजय : नकल तो कर सकते हो ?

जय : नकल ही तो करते रहे उसको, जिसने हिरण्यकशिपु

का राज हम पर थोप दिया।

विजय : बक बक बन्द, बन्दर चन्द।

[वज्रदंत का प्रवेश]

विजय : सावधान! वज्रदंत है गुप्तचर विभाग का आला अफसर। बनता है राजा का विश्वासपात्र—ऐसे राजा का जिसका कोई विश्वास नहीं। जरूरत से ज्यादा महत्त्वाकांक्षी, इसलिए खतरनाक। जै हो, माई बाप को।

वज्रदंत : खबर मिली है तुम ज्योतिषी, तुम योगी ?

जय : नर्तकी ने बताया ? हे भगवान नर्तकी भी असली नहीं ?

वज्रदंत : पता है, भगवान का नाम लेना राजद्रोह है ?

जय : आदतन मुंह से निकल गया, भगवान से मेरा मतलब पैसा···कुर्सी···पद···पैसा···।

वज्रदंत : अरे, तुम तो बड़े काम के आदमी हो।

विजय : अरे ये त्रिकालदर्शी हैं।

वज्रदंत : और तुम जोगी ?

विजय : नहीं महाराज, मैं विजय, इसका शिष्य।

वज्रदंत : लेकिन मेरी सूचना अनुसार···अरे! ये उलट-फेर कैसे ?

विजय : उसी के बाद मेरे गुरुजी को आज्ञा हो गई कि अब से नकल करना बन्द। नहीं तो बंदर चंद।

वज्रदंत : ज्योतिषी महाराज, ये बताइये—ऐसा कोई अस्त्र नहीं, जिससे राजा मर सके, कोई मनुष्य, देवता, जीव-जंतु नहीं जो राजा को मार सके। कोई ऐसा स्थान नहीं,

समय नहीं, जहाँ राजा मर सके, फिर भी राजा भयभीत क्यों ?

जय : देखिये, मैं ज्योतिषी नहीं। लेकिन सोचता रहता हूँ तरीका।

विजय : जय हो त्रिकालदर्शी का।

[क्रोध से विजय को देखना]

जय : मैं प्रह्लाद का साथी।

विजय : सत्य के अलावा और कुछ नहीं बोलते। महाराज बताइये- फिर भी राजा भयभीत क्यों ?

जय : मुझे क्या मालूम ?

विजय : अरे बता भी दीजिए महाराज।

जय : महाराज कहोगे तो नहीं बताऊंगा। (रुककर) फिर भी राजा भयभीत क्यों ? इसलिए कि भय माने राजा। राजा माने भय।

[गाना]

भय माने राजा। राजा माने भय।
जय माने प्रजा। प्रजा माने जय॥
भय माने राजा। राजा माने भय···।

वज्रदंत : क्या मतलब ?

विजय : गुरु का मतलब शिष्य समझा सकता है। बात ये है महाराज, जिस राजा का कोई विश्वास नहीं, मतलब जिसे प्रजा ने राजा नहीं बनाया, किसी और ने राजा बनाकर बैठा दिया और कह दिया कि तू अमर है—पर जिसके पास अपना विश्वास नहीं, यह तो भयभीत रहेगा ही। ही ही ही ही।

वज्रदंत : तुम लोग कहाँ के रहने वाले हो ?

जय : इसी देश के।

विजय : मेरे गुरुजी को बातों में मत आइए। इन्हें सच बोलने का दौरा पड़ गया है। है है है है है।

[दोनों का हँसना। जय का गम्भीर होना।]

वज्रदंत : राजा का पुत्र प्रह्लाद। राजा का पुत्र ही उसका सबसे बड़ा शत्रु। इस परस्पर विरोध में—कौन किसके साथ, कौन किसके विरोध में, कुछ भी समझ में नहीं आता।

विजय : मेरे गुरुजी से सहायता ले लें····ले लें।

वज्रदंत : क्या मैं राज सिंहासन पर नहीं बैठ सकता ?

विजय : अकेले आपको ही नहीं, सबको नजर सिंहासन पर।

वज्रदंत : सावधान। मेरे सहायक आ रहे हैं। हमारी जो बातें यहाँ हुई हैं इनसे मत कहना। ये लो कागज। खाना-पूरी करते रहो। इसे भरते रहो। नाम। बाप का नाम। उम्र। पता लता सता।

[दोनों करने लगते हैं]

वज्रदंत : देश के आधे से ज्यादा लोग भेदिए और गुप्तचर बन गए हैं। किसी अनजान के सामने आपस में बातें मत करने लगना। खासकर राजा के बारे में, उसके शासन के बारे में कुछ भी कहना अपराध, प्राणायाम मत साध। प्रह्लाद के पक्ष में जाना, होना, उसके प्रति सहानुभूति रखना, राजद्रोह है। सावधान।

[गुप्तचर दूर खड़े हैं।]

वज्रदंत : राजा के अलावा यहाँ और कोई शक्ति नहीं। राजा के अलावा किसी और की ताकत पर विश्वास करना सरासर राजद्रोह। यहाँ किसी भी अपराध की सजा मौत। (विराम) कल प्रातःकाल एक पहर दिन चढ़े, राजदरबार से दायीं ओर के कमरे में आकर अपने प्रमाण-पत्र, पहचान-पत्र, प्रवेश-पत्र, अनुमति-पत्र सब खत्र वगैरह ले जाना, जाना ?

जय : तू भी इतना डरपोक ?

विजय : गुरुजी मत कर इतना शोक।

वज्रदंत : सीधे जाकर दायीं तरफ मुड़। बायीं ओर मुड़ना मना। ध्यान रहे—राजमार्ग पर चलना, बोलना, खिड़कियों से बाहर देखना, किसी तरह का शोर मचाना मना। दिन को सोना मना। कहीं कुछ कहना-सुनना अफवाहें फैलाना देश के साथ गद्दारी। राजधर्म के अलावा किसी और धर्म की चर्चा करना अपराध।

[जाना]

जय : नाटक शुरू हो गया।

विजय : एक ओर हिरण्यकशिपु, जो किसी तरह से मारा नहीं जा सकता। उसके पास इतनी शक्तियाँ, सब साधनों का स्वामी।

जय : दूसरी ओर प्रह्लाद—सीधा-सादा, साधनहीन, प्रेम-मय। जो युद्धरत है पर घृणा नहीं जिसमें। जो हिरण्य-कशिपु जैसे बर्बर, निरंकुश से लड़ रहा, स्वतंत्रता के लिए।

विजय : हिरण्यकशिपु को न कोई मनुष्य मार सकता, न पशु। लेकिन हाँ, नर और पशु से जो नरसिंह बनता, वही हिरण्यकशिपु को मार सकता। प्रह्लाद जानता, अगर कोई मनुष्य हिरण्यकशिपु का वध करेगा तो वह भी हिरण्यकशिपु जैसा राजा होगा। इसलिए, चाहिए नरसिंह।

जय : नरसिंह अवतार हमारे सामने होगा। अभी हम देखेंगे प्रह्लाद के अभिन्न मित्र हुतासन को। हुतासन में पशुत्व है, पशुओं में श्रेष्ठ, सिंह का तत्व। साथ ही उसमें श्रेष्ठ नर का तत्व। प्रह्लाद नर और सिंह दोनों को जोड़कर एक कर देगा।

दोनों : देखें हम यही नरसिंह कथा। हिरण्यकशिपु ने उस जंगल में आग लगवा दी, जहाँ हुतासन रहता था। लेकिन आग लगने से पहले ही प्रह्लाद ने हुतासन को जंगल से बाहर कर लिया।

[दृश्य परिवर्तन]

हुतासन : मुझे जंगल से पकड़ कर यहाँ क्यों लाये ?

प्रह्लाद : तुम मेरे बचपन के साथी। गुरुकुल के मित्र···सहपाठी।

हुतासन : गुरुकुल की याद मत दिलाओ। शुक्राचार्य गुरु नहीं, हिरण्यकशिपु का खरीदा गुलाम। शिक्षा के नाम पर हमारे चित्त में बर्बादी के बीज बोया। शूद्र और अनार्य के सिद्धान्त गढ़े। अपनी भूमि से हमें उखाड़ने के बीजमंत्र बोये। जो अपना, वह बुरा, जो पराया वही अच्छा। जिसने ये विकार फैलाये ऐसे पतित को

गुरु कहना···ऐसे गुरुकुल में आग लगाकर मैंने ठीक किया।

प्रह्लाद : गुरुकुल हमारी स्मृति, उसे हमें भूलना नहीं। राजा यही चाहता, हम अपने आप से कट जाएं।

हुतासन : हमारा अपनापन कहाँ ? हमारी भाषा में, बोली में, खानपान, पहनावा, भावना, विचारना, कहाँ, किसमें मेरा अपमान ? कोई पूछता क्यों नहीं अपने आप से—मैं कौन ? ये राजा कौन ? कैसे बिना ? कहाँ से आया ?···प्रश्न करना राजद्रोह क्यों ?

प्रह्लाद : हम प्रश्न करते।

हुतासन : लोग भयभीत होते।

प्रह्लाद : यथा राजा तथा प्रजा।

हुतासन : तथा राजा क्यों नहीं ?

प्रह्लाद : तुम्हें जंगल से पकड़कर इसीलिए यहाँ लाया, तुम यही प्रश्न करो। मुझसे···स्वयं से···सब से···हवा से चिड़ियों से।

हुतासन : मैं शूद्र-अनार्य, मेरा निवास जंगल। यहाँ रहा तो केवल पशुवत हत्यायें करूँगा। प्रश्न करना, सब के साथ होना। हो ? ना।

प्रह्लाद : ये बताओ राजा कहाँ से आया ?

हुतासन : जब हमारा अपना कुछ नहीं, उसी शून्य में पैदा हुआ हिरण्यकशिपु।

प्रह्लाद : उसे बढ़ते हुए हमने देखा ?

हुतासन : उसके गुरु शुक्राचार्य में देखा। तभी मैं मारकर भागा। जंगल, जंगल, जंगल।

प्रह्लाद : और कहाँ देखा ? याद दिलाऊँ ? मन में, मौन में,

लालच में, भूख में—दूसरों के ऊपर अधिकार जमाने, निर्बल पर क्रोध करने···। उस क्षण में जहाँ किसी ने सोचा—मेरे अलावा कहीं कोई नहीं, कुछ भी सुंदर पूज्य, पवित्र नहीं,···नहीं नहीं, कहीं नहीं।

हुतासन : जाने दो मुझे।

प्रह्लाद : बचन दो, अब मुझे छोड़कर नहीं जाओगे।

हुतासन : तुम्हारे साथ क्या करूँगा ? जो मेरा स्वभाव, मुझे करने नहीं दोगे। तुम्हारे भाव जो, वे मेरी समझ नहीं आयेंगे···।

प्रह्लाद : हम दो का एक साथ होना आश्चर्यजनक।

हुतासन : आश्चर्य बच्चों का जगत।

प्रह्लाद : आश्चर्य आस्तिकता।

हुतासन : समझो मैं नास्तिक।

[जाने लगना]

प्रह्लाद : कहाँ जाते हो ?

हुतासन : मुझे छोड़ दो।

प्रह्लाद : हुतासन।

हुतासन : मुझमें प्रतिहिंसा, हिरण्य की ताकत से। वह अवध्य, इसका सबूत क्या ?

प्रह्लाद : तुमसे सत्य की जिज्ञासा ?

हुतासन : मुझसे लगता, क्रूरता में ही सत्य की दिशा।

प्रह्लाद : यह कहो, तुम अपने पशु से मुक्त होना चाहते हो।

हुतासन : मैं मनुष्य, पर मेरा स्वभाव पशु का। क्यों ?

प्रह्लाद : नहीं, सिंह का। सिंह होकर भागते कहाँ ?

हुतासन : इस नगर में और अधिक रहा तो पागल हो जाऊँगा।

मेरा निवास जंगल। मुझे छोड़ दो मेरे अन्तरविरोधों में।

प्रह्लाद : अपनी मातृभूमि से कुछ लेना-देना नहीं ? एक बर्बर, निरंकुश राजा के हाथ में देश को गिरवी कर खुद निराश जंगल चले जाना, यह कहाँ का पौरुष ?

हुतासन : जीत शक्ति की। मेरे पास वो शक्ति नहीं !

प्रह्लाद : हर क्षण तुलना करते ? अनुभव नहीं करते तुम तुम हो। नहीं जानते तुम अतुल हो। अतुल सिंह।

हुतासन : जो चोटें मिलीं, मैं वही। मुझे जो मिला, वह मैं नहीं। मैं चरित्र पात्र नहीं।

प्रह्लाद : बाँट कर मत देखो। हिरण्यकशिपु को भी नहीं। स्वयं को भी नहीं। हाँ हाँ। नहीं, नहीं।

[विराम]

प्रह्लाद : यही आत्मयुद्ध धर्मयुद्ध। इसे बिना अहंकार, बैर क्रोध के लड़ा जाए। युद्ध धर्म, इसी भाव से लड़ा जाय हिरण्यकशिपु से। वह मेरे पिता, देश के राजा, युद्ध में भी इस सत्य को नहीं भूलता। हाँ हाँ !

हुतासन : तुम्हारे साथ मैं यह युद्ध नहीं लड़ सकता। जो मेरा, वह मेरा मित्र। जो नहीं वह मेरा शत्रु। जो धर्म वह युद्ध नहीं। जहाँ युद्ध, वहाँ धर्म नहीं। हिरण्यकशिपु को मार डालना चाहता हूँ, इसके लिए कोई नियम, मर्यादा नहीं मानता।

प्रह्लाद : पर वह अवध्य।

हुतासन : यह भ्रम उसने फैला रक्खा।

प्रह्लाद : नहीं यह सत्य।

हुतासन : इसका प्रमाण ?

प्रह्लाद : सत्य का कोई प्रमाण नहीं होता।

हुतासन : फिर सत्य सत्य नहीं।

प्रह्लाद : यही चाहता राजा, लोग सत्य पर अविश्वास करने लगें। प्रमाण को ही सत्य मानने लगें।

हुतासन : तुम्हारा विश्वास, वह नहीं मारा जा सकता ?

प्रह्लाद : न मनुष्य से, न पशु से।

[हुतासन का जाने लगना।]

प्रह्लाद : मुझे छोड़कर चले जाना, पर अपनी इस मातृभूमि को नहीं छोड़ना। अधर्म के युद्ध के खिलाफ जो धर्मयुद्ध छिड़ा है, उसे देखने के लिए यहाँ रहना। इस सत्य का साक्षी होना—दूसरे के द्वारा विश्वासघात होने पर भी मनुष्य का धैर्य विचलित नहीं होता। सुनो नर हुतासन, वह हम, तुम, यहाँ कोई अकेला नहीं। जंगल में तुम अकेले नहीं। विषमता के अंधकार में हिरण्यकशिपु यहाँ का राजा बना है। अपनी शक्ति से नहीं, हमारी कमजोरियों से। आर्य, अनार्य, जाति, धर्म की आपसी फूट, नीच-ऊँच, सवर्ण-शूद्र के भेद में से आया वह तानाशाह।

हुतासन : तो ? तो ? तो ?

प्रह्लाद : तो के आगे और कुछ नहीं सोचा, ऐसा कुछ नहीं किया, तभी हमारे बीच प्रकट हुआ एकशास्ता। अब कुछ नहीं करोगे तो इसका राज्य फैलता चला जाएगा। मनुष्य मशीन हो जाएगा। बहुत दूर से होगा उसका संचालन।

हुतासन : ईश्वर में इतना विश्वास रखने वाले, तुम भी ऐसी बातें करते ?

प्रह्लाद : ईश्वर, शून्य और कल्पना नहीं। वह यहीं, सबके बीच, हमारे सम्बन्धों, कर्मों और व्यवहारों में।

हुतासन : तुम्हारी बातें मेरी समझ में आतीं, पर विश्वास नहीं कर पाता।

प्रह्लाद : तुम्हारे पास कोई श्रद्धा नहीं।

हुतासन : श्रद्धा, यह क्या ?

प्रह्लाद : कल कोई कहेगा प्रह्लाद की हत्या कर दो, तुम कर डालोगे ? कोई कहेगा आत्महत्या कर लो। तुम करोगे ?

हुतासन : नहीं।

प्रह्लाद : अपना कोई अर्जित विश्वास ?

हुतासन : अपना अस्तित्व।

प्रह्लाद : किन्तु अस्तित्व की अनुभूति नहीं ?

हुतासन : है ?

प्रह्लाद : यही श्रद्धा। चलो, यहीं से शुरू करो।

हुतासन : कहाँ से ?

प्रह्लाद : अपने आप से।

हुतासन : चाहते क्या हो ?

प्रह्लाद : अपने आप से पूछो—चाहते क्या हो ?

हुतासन : हिरण्यकशिपु का विनाश।

प्रह्लाद : असंभव। वह इतना शक्तिशाली, इतना आत्म सुरक्षित कि चाहे कोई मनुष्य हो या पशु, प्राणी हो या अप्राणी, देवता हो या दैत्य, किसी से भी उसकी मृत्यु नहीं हो सकती। भीतर, बाहर, दिन में, रात में, अस्त्र-शस्त्र

से पृथ्वी या आकाश में—कहीं भी उसकी मौत नहीं होगी। प्रत्यक्ष युद्ध में उसका कोई सामना नहीं कर सकता।

हुतासन : ये सब झूठ। उसमें इतनी शक्ति नहीं। ये कुप्रचार···।

प्रह्लाद : अपने साधनों से उसने सम्भव किया। आत्मरक्षा के इतने सारे विधि-विधान, सब उसी के निमित्त।

हुतासन : फिर उससे लड़ना, निरर्थक ?

प्रह्लाद : नहीं। उसके पास जितनी शक्ति, वह उतना ही शक्ति-हीन। हिरण्यकशिपु जितना अपूर्ण उतनी शक्तियों, अधिकारों से अपने को पूर्ण करने का प्रयत्न।

हुतासन : कोई छिपा हमें देख रहा। कौन ? इधर चल।

भिखारी : भिक्षा। आयुष्मान भिक्षा।

हुतासन : यह भिखारी नहीं। (पकड़ लेता है) क्यों, कौन है ? सच-सच बता, नहीं तो गला टाँच दूंगा।

प्रह्लाद : हुतासन।

हुतासन : यह भिखारी नहीं; गुप्तचर।

प्रह्लाद : तो क्या हुआ ?

हुतासन : इसने सारी बातें सुन लीं।

प्रह्लाद : यह अपना काम कर रहा था, हम अपना कर रहे थे। तुम भी हिरण्यकशिपु हो क्या ? वही होना चाहते हो। यही है लड़ाई ?

[भिखारी का भागना।]

प्रह्लाद : जो भयभीत है, वह गुप्त शक्ति पर विश्वास करता है। वही डरता है मृत्यु से।

हुतासन : भयभीत मैं भी हूँ।

प्रह्लाद : जंगल में रहने के नाते। जब मनुष्य जंगल में रहता, न वह नर रह जाता, न सिंह हो पाता।

हुतासन : उपहास मत करो (सहसा) कोई आ रहा।

[कयाधू का प्रवेश। प्रह्लाद का बढ़कर माँ का चरण स्पर्श करना।]

प्रह्लाद : माँ।

कयाधू : अनर्थ हो गया बेटा। तेरे चाचा हिरण्याक्ष को सूअर ने मार डाला।

प्रह्लाद : सूअर नहीं, वाराह ने।

[हुतासन का हँसना, पशुवत चेष्टायें करना।]

कयाधू : हिरण्याक्ष को जैसे ही पता चला, तुम हुतासन से मिलने जंगल में गये हो, सैनिकों के साथ उसने जङ्गल के उस भाग पर आक्रमण किया। जङ्गल में आग लगा दी कि हुतासन सहित प्रह्लाद उस जङ्गल को आग में स्वाहा हो जाएगा। हाहाकार कर जङ्गल जल रहा था। हिरण्याक्ष जङ्गल के बाहर खड़ा अट्टहास कर रहा था। उसी समय जलते हुए जङ्गल के भीतर से वह वाराह निकला और हिरण्याक्ष पर काल की तरह टूट पड़ा। सारे सैनिकों सहित हिरण्याक्ष वहीं मारा गया।

हुतासन : हू हू हू हू ! हाअ ! वह वाराह मैं होता। अपने जबड़े मे हिरण्याक्ष का क्षत-विक्षत शव दबोचे इस नगर में घूमता। राजमार्ग को उसके रक्त से भिगो देता।

कयाधू : क्रोध से विक्षिप्त तेरे पिता तुझे ढूंढ़ रहे।
हुतासन : आने दो। मैं वाराह बनकर····।
प्रह्लाद : सिंह बनकर क्यों नहीं ?

[अपने सैनिकों के साथ हिरण्यकशिपु का प्रवेश। प्रह्लाद की माँ प्रह्लाद और हुतासन को छिपा लेने का प्रयत्न, पर वे अब छिपना नहीं चाहते।]

प्रह्लाद : पिताश्री को प्रणाम।
हिरण्य : ये कौन ?
प्रह्लाद : हुतासन।
हिरण्य : देखते क्या हो। बंदी बनाकर कारागार में डाल दो।
प्रह्लाद : रुको। यह निर्दोष।
हिरण्य : इसी नरपशु ने मेरे छोटे भाई हिरण्याक्ष की हत्या की।
प्रह्लाद : यह असत्य।
हिरण्य : जंगल से यह मेरे राज्य में कैसे आया ?
प्रह्लाद : राज्य नहीं, इसका देश।
हिरण्य : मेरे राज्य में बिना मेरी अनुमति के ?
हुतासन : घृणा है तुम्हारे इस राज्य से। थूकता हूँ तेरी निरंकुश शक्ति पर। भयभीत, जिस शक्ति को बटोर कर बैठा है, वही चिता होगी।
हिरण्य : पकड़ लो इस जंगली पशु को।
हुतासन : याद रखना, हम जंगली, शूद्र, दलित, अनार्य, जिन्हें न जाने कितने नाम दिए, हम एक दिन वाराह बनकर तुझ पर टूटेंगे।

प्रह्लाद : वाराह क्यों, नरसिंह होकर।

[सबका हुतासन पर टूटना। घेरा डालना। पर किसी का पास जाने का साहस नहीं कर पाना।]

हिरण्य : कृपाण चलाओ। फाँस फेंको।
प्रह्लाद : इनकी हिंसा की जाल में मत फँसना हुतासन। बाहर निकल आओ। संकल्प लो क्रिया का, मत बनो प्रतिक्रिया।

[हुतासन का उस घेरे से निकल आना। सबका उसके पीछे दौड़ना।]

हिरण्य : तेरा प्रश्न, मैं कौन हूँ ?
प्रह्लाद : मेरे पिताश्री।
हिरण्य : और ?
प्रह्लाद : इस देश के कुराजा।
हिरण्य : और ?
प्रह्लाद : और कुछ नहीं।
हिरण्य : और हूँ ?
प्रह्लाद : आपको पता होगा।
हिरण्य : मैं ईश्वर हूँ।
प्रह्लाद : सारी सृष्टि ईश्वरमय है।
हिरण्य : मैं सम्पूर्ण हूँ।
प्रह्लाद : यह भाषा अपूर्ण की है।
हिरण्य : मैं सर्वशक्तिमान हूँ।
प्रह्लाद : सर्वशक्तिमान केवल ईश्वर है।

हिरण्य : और वही ईश्वर मैं हूँ।

प्रह्लाद : (चुप है)

हिरण्य : चुप क्यों ?

प्रह्लाद : जिसके राज्य में प्रजा को चुप रहने तक का अधिकार नहीं, वह ईश्वर क्या राजा तक नहीं।

हिरण्य : प्रह्लाद !!!

प्रह्लाद : यह नाम मेरी माँ का दिया हुआ है।

हिरण्य : मैं तेरा नाम मिटा सकता हूँ।

[प्रह्लाद का निर्भय चला जाना। राजा का देखते रह जाना।]

हिरण्य : सुनो।

[वज्रदंत आता है।]

वज्रदंत : श्री श्री महामार्तण्ड, सर्वशक्ति अखंड, ईश्वरानन्द महाराजाधिराज की जै हो।

हिरण्य : श्री श्री महामार्तण्ड। सर्वशक्ति अखंड !! ये भाषा किसने गढ़ी ?

वज्रदंत : राज पंडितों ने।

हिरण्य : उन्हें गधों पर बिठाकर राजधानी से दूर करो।

वज्रदंत : जो आज्ञा महाराज।

[वज्रदंत का जाना।]

हिरण्य : पृथ्वी और बैकुंठ, देवता और दैत्य, शाप और वरदान सब प्रपंच हैं। अपने आपको देवता, साबित किए रखने के लिए ये कथायें गढ़ते। शास्त्र तैयार करते। दर्शन खड़ा करते। जो दृश्य नहीं, वह असत्य है, प्रपंच है इन मूर्खों का।

[वज्रदंत के साथ शुक्राचार्य का प्रवेश]

हिरण्य : हिरण्याक्ष का हत्यारा अब तक पकड़ा नहीं गया। प्रह्लाद ने झूठी कथायें प्रचारित कर रखी हैं प्रजा में। लोग बेसिर-पैर की बातों पर विश्वास करते। अभी तक ब्रह्म था, अब विष्णु आ गया। एक शिव पहले ही से था।

शुक्राचार्य : राजन, आप आज बहुत विचलित हैं।

हिरण्य : मैं सत्य से नहीं, झूठ से डरता हूँ।

शुक्राचार्य : राजन शान्त हो। जो आपके गुण को नहीं बिगाड़ सकता, वह आपके जीवन को नहीं नष्ट कर सकता।

हिरण्य : मेरे समस्त गुणों का आधार, मुझ पर मेरा अमिट अन्धविश्वास। मुझे कोई मार नहीं सकता, न कोई मनुष्य, न पशु। न कोई अस्त्र, न कोई शस्त्र। ऐसा कोई समय नहीं, जगह नहीं। यहीं से मैं होता हूँ सर्वशक्तिमान। किन्तु प्रह्लाद पूछता—यह शक्ति मुझे कहाँ से मिली ? मैं कहता - मैंने स्वयं अर्जित की। वह कहता—ईश्वर से मुझे मिला। सारी शक्तियों का मूल स्रोत ईश्वर। उसने मेरे लिये भी कथा गढ़ी है कि मैंने घनघोर तप किया, तब ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर मुझे अद्भुत वर दिए।

शुक्राचार्य : राजन ! तपस्या तो की है।

हिरण्य : पर किसी ईश्वर, ब्रह्म, परमात्मा की तपस्या नहीं।

मैंने अपने आप से तपस्या की। सारी शक्ति मैंने खुद अर्जित की।

शुक्राचार्य : स्वीकार करता हूँ।

हिरण्य : तो प्रजा प्रह्लाद के अन्धविश्वासों में क्यों आती है ? कहाँ है मेरा धर्म प्रचार ?

शुक्राचार्य : देश में प्रचार कार्य बड़ी तेजी से हो रहा है—जगह-जगह स्तम्भों, शिला-लेखों, भित्तिचित्रों, पाठशालाओं, राजमार्गों पर हमारे धर्म का प्रचार है।

[दृश्य—वस्त्रों, पट्टों और चित्रों के साथ लोगों का आना। लोग नृत्य कर रहे हैं। संगीत उठ रहा है। पट्टों, स्तम्भों पर लिखे हुए हैं।]

एक : देश का नहीं; राज्य का विश्वास करो।

दूसरा : राज्य ही सर्वशक्तिमान।

तीसरा। सुख भोग ही जीवन का लक्ष्य।

चौथा : अन्धकार से प्रकाश की ओर।

[नर्तकी के साथ लोग नाचते-गाते]

ओ हो हो ओ हो हो।
राजा को पंख निकल आया
ओ हो हो ओ हो हो
राजा को सींग निकल आई
ओ हो हो ओ हो हो
राजा को मर गई नानी
ओ हो हो ओ हो हो
राजो को एक आँख कानो
ओ हो हो ओ हो हो

दूसरा अंक

[लोग नाचते-गाते हुए जा रहे थे, वज्रदंत का उनमें से जय-विजय को पहचान कर रोक लेना।]

वज्रदंत : राजा बहरा है, मगर हम उसके नौकर-चाकर अधिकारी बहरे नहीं। क्या गा रहे थे ? राजा को मर गई नानी ? राजा को एक आँख कानो ?

विजय : जो नहीं श्रीमान, आप के सुनने में गलती हो गई मेहरबान। हम तो महाराजाधिराज के कल्यान···

जय : मैं प्रह्लाद का आदमी।

विजय : इसमें कहने को क्या बात ?

जय : सच को कहना जरूरी।

विजय : सच बोलने का ठेकेदार ?

जय : यही तर्क झूठो जिन्दगी जीने का बहाना।

वज्रदंत : बोल। हिरण्यकशिपु को जै।

जय : छै।

विजय : जै।

जय : छै।

विजय : छै।

वज्रदंत : छै के माने जै। क्या समझे ? इन फजूल के नारों से

कुछ नहीं होता। असली काम चुपचाप होते हैं।

जय : जो मर जाते हैं हम उन्हीं का साथ देते हैं। हाँ, हाँ, हिरण्यकशिपु के मरने के बाद, लोग उसकी पूजा करने लगेंगे। हम इतने गिर चुके हैं—ऐसे राज में कुत्ते-बिल्ली भी नहीं रह सकते। सारा जंगल सेना से घिरवा लिया। सारे नगर गुप्तचरों से। नगरवासी और आदिवासी के बीच दीवार खड़ी कर दी गई। हिरण्यकशिपु कहता है—प्रह्लाद को मरवा दूंगा प्रजातंत्र के जंगल में। हुतासन को नगर की भोगी संस्कृति में डुबोकर…।

वज्रदंत : देखो, ये निराशा भरी बातें छोड़ो। मेरी बात बड़े ध्यान से सुनो। अगर यह राजा हिरण्यकशिपु पराजित नहीं किया गया, तो सर्वनाश होगा।

जय : हो, हम क्या करें—जहाँ हम अपनी असलियत बता नहीं सकते…।

वज्रदंत : यह भी कोई बात हुई भला।

जय : तो ऐसी कोई बात बताओ।

वज्रदंत : करोगे ?

जय : कुछ करने के लिए ही तड़प रहा हूँ।

वज्रदंत : होशियारी पर विश्वास है या ईमानदारी पर ?

जय : ईमानदारी पर।

वज्रदंत : तो सुनो, मैंने राजा को तुम्हारे ज्योतिष पर पूरा विश्वास दिला दिया है। इसलिए बंधु, राजा को किसी गहरे अंधविश्वास में फँसा दो, ताकि सारी प्रजा इसके विरुद्ध होकर प्रह्लाद के साथ हो जाए।

जय : ये हुई न कुछ बात। जरा सोचने दो।

[जय का चिंता में लगना। तरह-तरह की मुद्रायें करना। उछलना-कूदना।]

जय : मिल गया। प्राप्त हो गया। जै हो वज्रदंत की। सुनो। एकांत में। यहाँ नहीं, यहाँ। वहाँ। यहाँ। हाँ हाँ हाँ। मुँह खोल लो।… हाँ। राजा का दूसरा विवाह होगा।

वज्रदंत : क्या ?

जय : राजा हिरण्यकशिपु का दूसरा विवाह होगा मिट्टी के घड़े से।

[तीनों का परस्पर सिर जोड़कर मंत्रणा करना। प्रकाश बुझना। फिर प्रकाश आता है तो राजा के सामने वज्रदंत। पीछे खड़े हैं जय-विजय।]

वज्रदंत : महाराजाधिराज। वही सबसे बड़ा ज्योतिषी ले आया हूँ। यह शिष्य है ज्योतिषी महाराज का।

हिरण्य : मेरा भाग्यफल।

जय : अश्वनी…भरणी…कृतिका…रोहिणी…महाराज। आपका एक विवाह और होगा।

हिरण्य : क्या ? हो हो हो हो।

[विचलित]

जय : विवाह के दूसरे दिन ही यदि उस पत्नी की मौत न हुई तो आपकी मृत्यु।

हिरण्य : हो हो हो हो।

जय : ग्रहों का ऐसा ही संयोग। यो यो यो योग।

विजय : ऐसा ही योगायोग ।

[राजा विचलित । सब उसके पीछे-पीछे दौड़ते हैं ।]

हिरण्य : हो हो हो हो, विवाह करूंगा । विवाह करके तुरन्त पत्नी की हत्या करा दूंगा ।

जय : दोहाई महाराज की । वह पत्नी किसी दूसरे के हाथ नहीं मर सकती । उसका मृत्यु योग केवल पति के हाथ ।

हिरण्य : मैं ही मारूंगा, हो हो हो हो ।

जय : मरते समय उसके मुंह से यदि एक शब्द भी निकला, रक्त की एक बूंद भी गिरी, आंख से एक आंसू भी टपका, तो उससे वही स्त्री झट से जन्म ले लेगी ।

हिरण्य : इसका उपाय क्या ? हो हो हो हो ।

जय : एक ही उपाय महाराज । मिट्टी के घड़े से महाराज का विवाह हो जाए ।

हिरण्य : हो जाए । हो हो हो हो ।

[संगीत । घड़े को दुल्हन की तरह सजा कर, गाते हुए लोगों का रंगभूमि पर ले आना ।]

हे हे हे हे हेअ…हे !
पुरइन पात बैठी घड़ो रानी
चम चम चमकै सोहाग । हे हे हे हे ऽऽ…।
मंगल चौक बैठो रानी

राजा पड़ो तेरो भाग ।।
हे हे हे हे हे ऽऽ…।

[दुल्हा वेष में राजा हिरण्यकशिपु । घड़े से राजा का ब्याह होना । बज्रदंत हाथ में घड़े को उठाए हुए है । सप्तपदी होना । संगीत और नृत्य ।]

धनि-धनि राज बियाह आजु शुभ घरियाहो
जगर-मगर परभात सोन उजियरिया हो ।
रानी अमर होय अहिबात प्रजा हरसानो हो ।
घर-घर बाजी बधाई सुहागिन रानी हो ।

हिरण्य : हा हा हा ' अब मेरा ब्याह हो गया ।

सब : हाय हाय माटी का घड़ा
हाय हाय माटी की महारानी ।

हिरण्य : घड़ा रानी मेरी महारानी । (घड़े को हाथ में उठा लेता है ।) घड़ा रानी मेरी महारानी ।

[सब फिर गाते हैं ।]

हिरण्य : बंद करो गाना बजाना । मुझे अपने काम से काम । एक लक्ष्य एक नाम । एक निर्णय सीधा-सादा । नहीं बीच में कोई बाधा । सोचना, विचारना नहीं, चुपचाप अपना काम । अपनी नवब्याहता रानी की हत्या ।

[प्रह्लाद की माँ कयाधू का प्रवेश]

कयाधू : नहीं, नहीं । घट रानी मुझे दो । इसके गले में अपना

गला बाँधकर गहरे जल में डूब जाउंगी। अब तेरे राज में और जिंदा नहीं रहना चाहती।

हिरण्य : बिल्कुल ठीक। उसके लिए और कई घड़ों का प्रबन्ध किया जाए। घड़ों में लोहे भर दिए जाएं, ताकि प्रह्लाद की माँ को डूबने में कोई परेशानी न हो। हो हो हो।

कयाधू : नहीं, यह घड़ा नहीं, नई रानी। मैं इस राजमहल में क्या हूँ, यह रानी मेरी निशानी।

हिरण्य : ओह। तो यह घड़ा क्या है ?

कयाधू : यह घड़ा गूंगी प्रजा, जिसे तुम जो चाहो नाम देते। जैसा चाहो वैसा काम लेते। काम के बाद इसे नष्ट कर देते, ताकि कहीं उस कर्म का कोई नामो निशान न रहे।

हिरण्य : रंग में भंग डालने कहाँ से आ गई ?

महारक्षक : ऐ चलो हटो यहाँ से।

हिरण्य : ये यहाँ आयो कैसे ? कारागार में डाल दो। वज्रदंत सुना नहीं ?

वज्रदंत : किसे डाल दूं महाराज ?

हिरण्य : महारक्षक को।

महारक्षक : मुझे ऐसा कोई आदेश नहीं था महाराज।

हिरण्य : हट जाओ मेरी आँखों के सामने से।

महारक्षक : वज्रदंत शत्रुओं से मिला है महाराज। इस पर विश्वास करना खतरनाक है।

हिरण्य : मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मैं सर्वशक्तिमान। पृथ्वी, आकाश, पाताल में उड़ता हूँ। अणु विस्फोटक यंत्र हैं मेरे पास। सबकी खबर मेरे पास। ऐसा क्या

है, जो मैं नहीं बना सकता ? निर्माण और विध्वंस का स्वामी हूँ मैं। ले जाओ कारागार में डालो। लो लो लो।

[वज्रदंत का महारक्षक को ले जाना।]

हिरण्य : अब मैं इसे समाप्त कर दूं। दूं दूं दूं…।

[प्रहार करने चलना। माँ का घड़े को अंक में ले सम्हालना]

हिरण्य : हट जा, रख इसे। से…से…से।

कयाधू : ये घड़ा नहीं पात्र है। इसका संस्कार हुआ है। ये तुम्हारी रानी है।

हिरण्य : मिट्टी का घड़ा है।

कयाधू : विश्वासपात्र है।

हिरण्य : हट जा, नहीं तो तेरी भी हत्या…। या या या।

कयाधू : तेरे लिए इसी तरह सारी प्रजा मिट्टी का घड़ा है ?

हिरण्य : छोड़ती है या नहीं ? मैं मरना नहीं चाहता।

कयाधू : दूसरों को मारकर जिन्दा रहना…?

[शुक्राचार्य का आना]

कयाधू : देखो शुक्राचार्य, यह अपनी नव सुहागिन की हत्या करना चाहता।

शुक्राचार्य : मिट्टी का घड़ा है।

कयाधू : जिस पर स्त्री होने का विश्वास किया गया, वह अब घड़ा नहीं विश्वासपात्र।

शुक्राचार्य : क्या ?

गला बाँधकर गहरे जल में डूब जाउंगी। अब तेरे राज में और जिंदा नहीं रहना चाहती।

हिरण्य : बिल्कुल ठीक। उसके लिए और कई घड़ों का प्रबन्ध किया जाए। घड़ों में लोहे भर दिए जाएं, ताकि प्रह्लाद की माँ को डूबने में कोई परेशानी न हो। हो हो हो।

कयाधू : नहीं, यह घड़ा नहीं, नई रानी। मैं इस राजमहल में क्या हूँ, यह रानी मेरी निशानी।

हिरण्य : ओह। तो यह घड़ा क्या है ?

कयाधू : यह घड़ा गूंगी प्रजा, जिसे तुम जो चाहो नाम देते। जैसा चाहो वैसा काम लेते। काम के बाद इसे नष्ट कर देते, ताकि कहीं उस कर्म का कोई नामो निशान न रहे।

हिरण्य : रंग में भंग डालने कहाँ से आ गई ?

महारक्षक : ऐ चलो हटो यहाँ से।

हिरण्य : ये यहाँ आयो कैसे ? कारागार में डाल दो। वज्रदंत सुना नहीं ?

वज्रदंत : किसे डाल दूँ महाराज ?

हिरण्य : महारक्षक को।

महारक्षक : मुझे ऐसा कोई आदेश नहीं था महाराज।

हिरण्य : हट जाओ मेरी आँखों के सामने से।

महारक्षक : वज्रदंत शत्रुओं से मिला है महाराज। इस पर विश्वास करना खतरनाक है।

हिरण्य : मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मैं सर्वशक्तिमान। पृथ्वी, आकाश, पाताल में उड़ता हूँ। अणु विस्फोटक यंत्र हैं मेरे पास। सबकी खबर मेरे पास। ऐसा क्या

है, जो मैं नहीं बना सकता ? निर्माण और विध्वंस का स्वामी हूँ मैं। ले जाओ कारागार में डालो। लो लो लो।

[वज्रदंत का महारक्षक को ले जाना।]

हिरण्य : अब मैं इसे समाप्त कर दूँ। दूँ दूँ दूँ···।

[प्रहार करने चलना। माँ का घड़े को अंक में ले सम्हालना]

हिरण्य : हट जा, रख इसे। से···से···से।

कयाधू : ये घड़ा नहीं पात्र है। इसका संस्कार हुआ है। ये तुम्हारी रानी है।

हिरण्य : मिट्टी का घड़ा है।

कयाधू : विश्वासपात्र है।

हिरण्य : हट जा, नहीं तो तेरी भी हत्या···। या या या।

कयाधू : तेरे लिए इसी तरह सारी प्रजा मिट्टी का घड़ा है ?

हिरण्य : छोड़ती है या नहीं ? मैं मरना नहीं चाहता।

कयाधू : दूसरों को मारकर जिन्दा रहना···?

[शुक्राचार्य का आना]

कयाधू : देखो शुक्राचार्य, यह अपनी नव सुहागिन की हत्या करना चाहता।

शुक्राचार्य : मिट्टी का घड़ा है।

कयाधू : जिस पर स्त्री होने का विश्वास किया गया, वह अब घड़ा नहीं विश्वासपात्र।

शुक्राचार्य : क्या ?

कयाधू : इसका सोहाग संस्कार हुआ है।

हिरण्य : कोई संस्कार फंसकार नहीं मानता। यही मिट्टी का घड़ा था, घड़ा है, और अब मैं इसे चकनाचूर करूँगा। हट जा। आ आ ऽ····।

कयाधू : जो बोल न सके, अपनी रक्षा न कर सके, राजा का धर्म उसको भाषा बनकर सुरक्षा दे।

शुक्राचार्य : राजा का हर कार्य विशेषाधिकार का होता है।

कयाधू : किस शास्त्र में लिखा ?

शुक्राचार्य : अगर नहीं लिखा, तो लिख दिया जाएगा।

कयाधू : तुम लिखागे शास्त्र, बिके खरीदे हुए···?

शुक्राचार्य : पूरी प्रकृति में हिसा है। सारी सृष्टि घूम रही है, नाश-विनाश की धुरी पर। यह पूरा जगत महाकाल का जलता हुआ विराट चूल्हा है। हम सब जन्म-मृत्यु की खौलती हुई कड़ाही में।

कयाधू : पूरा जगत सृजन-पात्र है।

शुक्राचार्य : राजा को इच्छा सर्वोपरि है।

कयाधू : गुरु शब्द के कलंक। आचार्य पद को पतित करने वाले। तभी इस देश को ऐसा राजा मिला।

शुक्राचार्य : महाराज, अपना काम पूरा करो। तुम्हारी प्रजा इस कर्मकाण्ड के साथ है।

कयाधू : नहीं।

[भागना चाहती है।]

हिरण्य : पकड़ लो। इसके सामने करूँगा वध।

[कयाधू को सैनिक पकड़ लेना चाहते

हैं, वह निकल जाती है। हिरण्यकशिपु घड़े को जमीन पर रख तलवार से मारना शुरू करता है। हत्या का कर्मकाण्ड पूरा कर सब जाते हैं। मंच पर केवल वही घड़ा रह गया है। बाहर से दौड़ी हुई भगवती आती है। घड़े को छूती है। माथे से, आँखों से लगाती है। हिरण्यकशिपु चुपके से आकर देखता रह जाता है।]

हिरण्य : कौन ?

भगवती : भगवती। प्रजा।

हिरण्य : वह देख रहा हूँ। पर तू है कौन ?

भगवती : मेरा नाम भगवती। मैं कुम्हारिन। यह घड़ा मैंने बनाया। मेरे अवं में पककर इतना लाल हुआ। मेरा लाल।

हिरण्य : तो ?

भगवती : महाराज बात यह हुई कि जिस समय यह घड़ा अवें में रखा गया, मैंने देखा, इस घड़े में बिल्ली ने दो बच्चे जने हैं। मैंने कहा—हाय राम, अगर अवें में आग दे दी गई होती, तो बच्चे जलकर भस्म हो जाते। कुम्हार ने कहा—अरे चुप रे नादान, भगवान कहाँ नहीं ? जल में, अग्नि में, हवा में···। भगवान बिल्ली के इन बच्चों को बचायंगे, वरना इस घड़े में बिल्ली बच्चे क्यों जनती ? तो मैंने जिद पकड़ ली कि यह झूठ है। कोई ईश्वर फीश्वर नहीं।

हिरण्य : शाबाश। मेरी प्रजा !!

भगवती : अवें को आग में से बच्चे कैसे जिंदा निकल सकते हैं ? मैंने अवें में आग लगा दी । बिल्ली के दोनों बच्चे इसी घड़े में बंद ?

हिरण्य : तो ? फिर···हो हो हो हो ।

भगवती : अवां पाँच दिनों तक आग में दहकता रहा । दस दिनों में ठंडा हुआ । अवां खोला गया । इस घड़े में बिल्ली के दोनों बच्चे जिंदा थे ।

हिरण्य : असम्भव । हो हो हो हो ।

भगवती : सच महाराज ।

हिरण्य : प्रह्लाद की उल्टी-सीधी बातों का तुम सब पर बुरा असर ।

भगवती : नहीं महाराज । सांच कहूँ, आंखिन देखी ।

हिरण्य : हो हो हो, अवें में इतने दिनों तक कोई जीवित चीज रख दी जाय और वह जले-मरे नहीं ? पागल है तू ।

भगवती : पागल वही, जिसे किसी पर विश्वास नहीं ।

हिरण्य : क्या कहा ?

भगवती : मालिक ईश्वर । ईश्वर चारों ओर । हर जगह । हममें सबमें···इस घड़े में···तभी यह पात्र है ।

हिरण्य : दीवानी हो गई ।

भगवती : एक ईश्वर । हम सब संतान उसी के ।

हिरण्य : तू मरेगी । गी गी गी ।

भगवती : ईश्वर की जो इच्छा ।

हिरण्य : इच्छा मेरी है—मरेगी । मेरे अलावा और कोई ईश्वर नहीं ।

भगवती : तू ईश्वर नहीं, उसकी संतान ।

हिरण्य : तेरी यह हिम्मत ?

भगवती : ज्यों-ज्यों अंधविश्वास और अहंकार का अवां ठंडा होता गया, त्यों-त्यों विश्वास का घड़ा पककर पात्र हो गया ।

हिरण्य : यह किसकी भाषा ?

भगवती : यह सब कुछ वही जलता हुआ अवां है । हम इसमें घड़े हैं । हम सबसे मिलकर जो एक बन रहा है, उसका हमें पता नहीं । जिस दिन पता चल जाता, उसी दिन उसका नाम ईश्वर हो जाता ।

हिरण्य : प्रह्लाद से तेरी भेंट हुई ?

भगवती : एक-एक जीव मिलकर एक विराट बना ।

हिरण्य : इस घड़े को ले जाना चाहती ?

भगवती : हाँ ।

हिरण्य : क्यों ?

भगवती : यह मेरा विश्वासपात्र है ।

हिरण्य : यह अब फूट चुका है । यह मेरी नई रानी की प्रतिमा थी । मैंने इसे नष्ट कर दिया ।

भगवती : कहीं कुछ नष्ट नहीं होता ।

हिरण्य : इस टूटे घड़े को फिर मिट्टी बनाकर (उठा लेता है) इसे मिट्टी में मिला देना होगा । तेरे अंधविश्वासों को भी इसी तरह मिट्टी में मिलाना होगा ।

भगवती : तुम अंधविश्वासी नहीं ? घड़े से शादी की ···।

हिरण्य : कैसे पता चला, मैंने इस घड़े से शादी की ? किसने कहा ? किसने फैलायी यह खबर ?

भगवती : राजा जो कुछ भी करता, प्रजा उसे जान लेती ।

हिरण्य : कैसे ? किस तरह ? कौन देता राजमहल के भेद ? कहाँ के भेदिये, जासूस, मेरे दरबार में आ छिपे हैं ? वह कौन है जो मेरा रहस्य बाहर सबको बता रहा ?

[भयभीत घड़े को लिए हुए भगवती को देखते रह जाता।]

भगवती : जीवन को इस तरह मत देखो कि यहाँ सदा के लिए जीने आया है। ये भी नहीं कि मरने के बाद लोग तुझे याद रखें। जब तू नहीं होगा, लोग तेरे बारे में बातें करेंगे। राजभवन के बाहर क्या-क्या हो रहा है, तुझे क्या पता ? कोई नहीं सच बताता, प्रजा कैसी है ? कहाँ-कहाँ, किस-किस के भीतर कैसा अवां जल रहा है। किन-किन जलते घड़ों में बिल्ली ने बच्चे जने हैं।

हिरण्य : कौन है तू ?

भगवती : बिल्ली के बच्चे प्रह्लाद और हुतासन हैं।

हिरण्य : कौन है तू ?

भगवती : पूछो अपने आप से कौन हूँ मैं ?

हिरण्य : कयाधू ? प्रह्लाद की माँ ?

[पृष्ठभूमि में नगाड़ा बादन]

तीसरा अंक

[हिरण्यकशिपु चिंतित खड़ा है। राज-नर्तकी नृत्य कर मन बहलाने के प्रयत्न में लगी है।]

हिरण्य : सब धोखा लगता। सब मेरे विरोध में। मैं जो कुछ भी करने चलता, मेरे शत्रुओं को पता चल जाता।

राज नर्तकी : महाराज। धीरज रखें।

हिरण्य : ज्योतिषियों ने मुझे धोखा दिया। उनकी बातों में आकर मैंने घड़े से विवाह किया। प्रजा प्रह्लाद के पक्ष में होती जा रही। हर क्षेत्र में विरोध बढ़ रहा। मूक प्रजा जिस तरह मुझे देखती, मुझे डर लगने लगा है।

राज नर्तकी : ये बातें अपने मुँह पर न लाएँ।

हिरण्य : गुरु शुक्राचार्य प्रभावहीन हो रहे। अब एक ही उपाय···।

राज नर्तकी : आज्ञा महाराज।

हिरण्य : तुम नर्तकी के रूप में विषकन्या हो—इस रहस्य को कोई और नहीं जानता। प्रह्लाद को खत्म करने का काम तुम्हें सौंपता हूँ।

राज नर्तकी : जो आज्ञा महाराज !

हिरण्य : क्या कुछ सोच-विचार रही हो ?

राज नर्तकी : जानती हूँ महाराज। सोचना-विचारना राजद्रोह है।

हिरण्य : प्रकृति में जो कुछ भी मूल्यवान है, वह देश का है। देश का जो श्रेष्ठ है, वह राजा का है। और वह मैं हूँ।

राज नर्तकी : (चुप है।)

हिरण्य : जो काम तुम्हें सौंपा गया, वह जल्द से जल्द पूरा होना है। न पूरा होने की सजा तुम जानती हो।

राज नर्तकी : पूरा होने का पुरस्कार भी जानती हूँ।

हिरण्य : मुझसे कोई इस तरह की बात करने की हिम्मत नहीं कर सकता।

राज नर्तकी : मैं राज्य की सम्पति हूँ। विषकन्या बनाने में राज्य का समय और धन लगा है।

हिरण्य : बातें नहीं, मुझे फल चाहिए।

राज नर्तकी : जब विष-वृक्ष लग चुका है तो विषफल आयेगा महाराज।

[नृत्य करना। हिरण्य का जाना। पृष्ठभूमि में नगाड़ा संगीत का उठना। नर्तकी का नृत्य करते हुए जाना। प्रह्लाद का पीछा करते हुए जय, विजय का प्रवेश।]

जय : राजकुमार रुकिए।

विजय : आगे जाना उचित नहीं।

जय : आपातकाल घोषित हो चुका है।

प्रह्लाद : ऐसा क्या हो गया ?

विजय : कुम्हारिन···वही भगवती···।

जय : माँ···आप की माँ···। माँ को सिपाही पकड़ नहीं पा रहे। देखते-देखते सामने से अदृश्य हो जाती हैं।

विजय : राजा को जब सूचना मिली कि माँ हुतासन को आशीर्वाद दे आयीं, अपने पुत्र प्रह्लाद के माथे पर विजय का टीका दिया, राजा ने घबड़ाकर आपातकाल की घोषणा की। कोई आ रहा।

जय : गुरु शुक्राचार्य आ रहे।

[शुक्राचार्य का प्रवेश]

प्रह्लाद : गुरुदेव को प्रणाम।

शुक्राचार्य : क्या यह संभव है, महाराजा और आपके बीच संधि हो सके।

प्रह्लाद : असंख्य लोग, जो हिरण्यकशिपु के बंदीगृह में कैद हैं, उन्हें मुक्त किया जाए। भारत देश की परम्परा रही है, यहाँ कोई बात गुप्तरूप से नहीं होती।

शुक्राचार्य : किस भारत देश की बात कर रहे हैं ? जो नहीं है, उसकी बात करने से कोई लाभ नहीं।

जय : जिसमें लाभ है, सिर्फ वही बातें की जाए ?

प्रह्लाद : हर बात में हम अपने भारत देश को याद रखेंगे।

शुक्राचार्य : कौन भारत देश ? अंग्रेजों से पहले का ? मुसलमानों से पूर्व का ?

प्रह्लाद : भारत देश, जो हमारी स्मृतियों में है। जो हमारे निःश्वास, उच्छ्वास, आशा, निराशा, हार-जीत, अंधकार-प्रकाश के क्रम में बँधा है। जहाँ शक्ति, कभी अकेली नहीं रही। जहाँ शक्ति और सत्ता को कभी

निरंकुश नहीं होने दिया गया। जहाँ शक्ति को कभी अकेली, एकांगी, नहीं रहने दिया। उसे सदा बाँधा है लोक से। शक्ति और श्रद्धा, श्रद्धा और विश्वास का हमेशा एक जोड़ा बनाया गया जैसे—राम का सीता से, पार्वती का शिव से, धरती का आसमान से, जल का वायु से, नाश का निर्माण से। आपको गुरु का पद मिला था, आप प्रश्न करें—कौन भारत देश ? आह। जब आप भूल गए अपने आपको, तभी तो ये दिन देखने पड़े।

शुक्राचार्य : मैं विवश हूँ।

प्रह्लाद : गुरु और विवश ?

शुक्राचार्य : मैं लज्जित हूँ।

प्रह्लाद : गुरु का पतन पूरे देश का पतन। आँख खोलो! लज्जित मत हो। उठो। जागो। जनक और विश्वामित्र जैसों की याद दिलाओ—जिन्होंने देश-चित्त में व्यक्तिरूप त्यागकर भावरूप धारण किया।

शुक्राचार्य : आज यह संभव नहीं।

प्रह्लाद : कितने वर्षों से यही झूठ फैलाया गया और जो असंभव था उसे संभव बनाया गया।

शुक्राचार्य : हिरण्यकशिपु ने राज सम्हाला न होता तो देश समाप्त हो जाता।

प्रह्लाद : हर तानाशाह यही कहता। देश-रक्षा के नाम पर निरंकुश राजा बनता।

शुक्राचार्य : शत्रु को शत्रु की तरह देखना ही पड़ता।

प्रह्लाद : अपने अलावा दूसरा शत्रु है, इस विचार का अंत क्या है ?

[सैनिकों का आना। जय-विजय का संघर्ष। वज्रदंत का आना। उसका संकेत पाकर जय और विजय का निकल जाना। प्रह्लाद को बंदी बनाये हुए सैनिकों का जाना। चिंतित शुक्राचार्य का खड़ा देखते रह जाना। फिर प्रस्थान। दृश्य में दूसरी ओर से सैनिकों के साथ प्रह्लाद और वज्रदंत का आना। सामने नर्तकी।]

नर्तकी : अरे रे रे। कहाँ ले जा रहे ? इन्हें लेकर मुझे रङ्गशाला जाना है।

पहला : हटो हटो।

दूसरा : रास्ता छोड़ो।

नर्तकी : जानते हो मैं कौन हूँ ?

पहला : हम तो जानते हैं। उनसे पूछो।

नर्तकी : हे। कहाँ ले जा रहे हो ?

वज्रदंत : जहाँ जाना है।

नर्तकी : कहाँ ?

वज्रदंत : महाराजाधिराज के सामने।

नर्तकी : मैं जो सामने खड़ी हूँ।

वज्रदंत : पीछे-पीछे आओ।

नर्तकी : मैं पीछे नहीं चलती।

वज्रदंत : सुना नहीं, पीछे-पीछे आओ।

नर्तकी : हेअ। सुन्दरियों से ऐसे बातें की जाती हैं ?

वज्रदंत : जब से सुन्दरियों ने राजा की नौकरी कर ली, कहाँ की सुन्दरी ?

नर्तकी : अरे, सुनो तो ।

[रोकती है]

वज्रदंत : तुम्हारे हाथ में अब वह जादू नहीं रहा । अधिक पीने से यही होता है ।

नर्तकी : वज्रदंत ।

[देखना]

वज्रदंत : आर्य वज्रदंत कहो । और मेरे पीछे-पीछे आओ ।

नर्तकी : आय वज्रदंत, आज क्या हो गया ?

वज्रदंत : मुझे अब सुन्दरता से कोई लगाव नहीं रहा ।

नर्तकी : यह तो मौत का लक्षन है ।

[चलते हैं सब]

वज्रदंत : प्रह्लाद कोई पशु है जो अपने साथ खींचे लिए जा रहे हो ? अरे पुत्र तो राजा का है ।

[नर्तकी नृत्य करती]

नर्तकी : (प्रह्लाद के पास जाकर) इसे मुझ पर संदेह हो गया है ।

प्रह्लाद : अभी तो तुम्हारे ही प्रभाव में है ।

नर्तकी : इसे किसी पर विश्वास नहीं । जब राजा को नहीं, तो प्रजा को कहाँ से ?

प्रह्लाद : तुम्हें अपने पर विश्वास है ?

नर्तकी : मैं किस लिए, क्यों आपके पास आयी, मैं कौन हूँ, यह

सब मुझे क्यों बता देना पड़ा ? मैं विष कन्या, किस उद्देश्य से आपके पास भेजी गई, उस सबको तोड़कर आपसे मिल गई, इसका दंड मुझे मालूम है ।

प्रह्लाद : जो किया उस पर पछता रही हो ?

[सब चलते हैं ।]

वज्रदंत : नर्तकी ! राज दरबार जाने का रास्ता इधर से है ।

नर्तकी : वहाँ मुझे क्या करना होगा ?

वज्रदंत : वहाँ पहुँचकर पता लग जाएगा ।

नर्तकी : आप लोग कहाँ जा रहे हैं ?

वज्रदंत : सीधे अपने रास्ते जाओ ।

[नर्तकी खड़ी देखती रह जाती है । सब आगे बढ़ते हैं ।]

प्रह्लाद : अपने सत्य के द्वारा सकल सत्य के साथ जुड़ना, अपने आपको केवल कुछ वासनाओं का पिंड न समझना···।

नर्तकी : प्रह्लाद ।

[सब चले जाते हैं ।]

नर्तकी : प्रह्लाद नहीं । आह्लाद ।

[उस दिशा में नतशिर, चरण रज माथे पर लेना]

नर्तकी : कौन ?

[शुक्राचार्य का प्रवेश]

मर्तकी : गुरु महाराज।

शुक्राचार्य : मुझे अब गुरु मत कहो। जो किसी से भी बिका हो वह गुरु नहीं।

[देखते रह जाना]

चौथा अंक

[हिरण्यकशिपु के सामने बंदी प्रह्लाद का ले आया जाना।]

प्रह्लाद : पिताश्री के चरणों में प्रणाम।

हिरण्य : मैं तुझे अपना पुत्र नहीं मानता।

प्रह्लाद : आपके न मानने से सत्य पर कोई असर नहीं पड़ता।

हिरण्य : मैं इस देश का एकाधिपति हूँ।

प्रह्लाद : यह झूठ है।

हिरण्य : तूने राजमहल की दीवारों पर यह लिखवाया : "हर राजा अपने ही झूठ के जाल में फँसता है?"

प्रह्लाद : हाँ, इसे खुद लिखा अपने हाथों से।

हिरण्य : राजपथ, चौराहों पर, सड़कों और गलियों में तुम्हारे आदमियों ने लिखा—

[वज्रदंत उसे पढ़ता है।]

वज्रदंत : सारा जगत् एक प्राणवान व्यक्ति है, जिसके तुम अंग-मात्र हो, तुममें और किसी भी अन्य मनुष्य में कोई अन्तर नहीं।···जो निरंकुश है वह पशु है।···हर तानाशाह हत्या से ही जन्म लेता है और हत्या से ही उसका अन्त होता है।

हिरण्य : बस बस, ये किसके शब्द हैं ?

प्रह्लाद : प्रजा के।

हिरण्य : कौन-सी प्रजा ?

प्रह्लाद : भारत देश की।

हिरण्य : कहाँ है वह नमकहराम प्रजा ? जिसे मैंने दुर्भिक्ष से बचाया, जिसे मैंने सब तरह से रक्षा, सुख शांति दी ? मैंने उसे मैंने ···। इस देश में चार-चार आठ-आठ दल थे। सारे दल आपस में कुत्तों की तरह लड़ रहे थे। हर कोई अपने आपको राजा-महाराजा घोषित कर देश को लूटने की कोशिश में लगा था। प्रजातन्त्र के नाम पर यहाँ हिंसा, भ्रष्टाचार, लूटपाट का राज था। पड़ोसी देश इसे हथियाने जा रहा था। (रुककर) मैंने टूटने से बचाया इस देश को। मैंने देश के भीतरी शत्रुओं से, बाहर के आक्रमणकारियों से इस देश की रक्षा की···मैंने···।

प्रह्लाद : आपने ऐसा क्यों किया ?

हिरण्य : देश सेवा। मातृभूमि के लिए त्याग···।

प्रह्लाद : मतलब, आपने अपने आपको देश पर आरोपित किया।

हिरण्य : मैंने अनुभव किया, देश में मुझमें कोई अन्तर नहीं। मैं ही देश।

प्रह्लाद : आप ही देश हो गए। देश हो "मैं" बन गया। तभी देश नहीं आप रह गए। देश सेवा नहीं, अपनी सेवा हो गई। देश प्रेम नहीं, अपनी इच्छा हो गयी।

हिरण्य : मूर्ख।

प्रह्लाद : अगर मैं मूर्ख तो आप मूर्खराज।

हिरण्य : चुप रह।

प्रह्लाद : देश के नाम पर केवल तुम्हीं हो अपने अहंकार में।

हिरण्य : अभागे ! मैं तुझे अब भी अपना राजकुमार घोषित कर सकता हूँ।

प्रह्लाद : आसुरी राजा के खिलाफ स्वराज्य के लिए मर जाना सबसे बड़ा पुण्य है।

हिरण्य : स्वराज्य एक जानवर है। जंगल का राज।

प्रह्लाद : उसी राज से तेरा उदय हुआ।

हिरण्य : मेरा उदय मेरे आत्मबल से हुआ।

प्रह्लाद : नदी की धारा रोक दो। बहता हुआ जल स्थिर हो जाए, सब सड़ने लगेगा। तेरे कारन शक्ति का बहाव थम गया। परिवर्तन की धारा रुक गई।

हिरण्य : मैंने शत्रुओं से लड़कर देश को बचाया।

प्रह्लाद : देश को अपनी मुट्ठी में कस लिया। देखो प्रजा का दम घुट रहा है।

हिरण्य : वज्रदंत।

वज्रदंत : आज्ञा महाराज।

हिरण्य : समाप्त करो।

वज्रदंत : जो आज्ञा महाराज।

[दोनों सैनिक प्रह्लाद को बांध लेते हैं।]

हिरण्य : सुन, अब तू भस्म होने जा रहा है। बता तेरी अंतिम इच्छा क्या है ?

प्रह्लाद : हे ईश्वर, केवल तेरी इच्छा पूरी हो···।

[प्रह्लाद को ले जाते हैं।]

हिरण्य : हम अपनी आँखों से वह दृश्य देखेंगे। डुंडा प्रह्लाद को

अपने अंक में लेकर जलती हुई चिता में बैठेगी। प्रह्लाद जलकर भस्म होगा।

[बौड़ी हुई डुंडा की भूमिका में नर्तकी आती है।]

डुंडा : मैं प्रह्लाद को अपने अंक में लेकर नहीं जल सकती।

हिरण्य : क्यों ?

डुंडा : मेरी आग विषय-वासना की है। प्रह्लाद को यह आग नहीं छू सकती।

हिरण्य : मेरी आज्ञा है तू प्रह्लाद को अपने अंक में लेकर जलेगी।

डुंडा : नहीं। यह आत्महत्या होगी।

हिरण्य : मेरे सामने दोनों को बाँधकर आग लगा दो।

[नीचे से ऊपर उठता। संगीत कोलाहल-भरा वहन दृश्य। डुंडा का जलना। प्रह्लाद का पूर्ण सुरक्षित रहना।]

हिरण्य : ह ह ह हा। अरे। अरे।
हो हो हो हो।
मुझसे बचकर जाएगा कहाँ
जहाँ तू मैं वहाँ ॥

प्रह्लाद : जहाँ तू वहाँ मैं।
जहाँ मैं वहाँ तू ॥

हिरण्य : तुझे समाप्त करने के लिए मेरे पास अनेक हथियार।

प्रह्लाद : जो कभी समाप्त नहीं होता उसे कैसा डर ?

हिरण्य : तू समाप्त होगा। मैं अमर रहूँगा। जल, वायु, पृथ्वी

चारों ओर, हर जगह अपना इतिहास लिखकर छोड़ जाऊंगा। कोई जिंदा नहीं बचेगा मेरा विरोधी। काई नहीं होगा प्रश्नकर्ता। मेरे शब्द शास्त्र होंगे। मेरे मुँह से निकली हुई बात प्रजा को सदियों तक याद रहेगी। मैं अब कभी नहीं सोऊंगा। इसे कारागार में डालो।

[प्रह्लाद को ले जाना। लोग बौड़े आते हैं।]

हिरण्य। चारों ओर से द्वार बन्द कर लो। प्रशासन में और कठोरता लाओ। भय के अलावा और कोई साधन नहीं। नहीं नहीं नहीं···। सुनो। शत्रुओं ने देश का सारा ध्यान मेरी तरफ लगा दिया। प्रह्लाद ने सारे शत्रुओं को मेरे खिलाफ एक कर दिया। मैंने कुछ कठोर निर्णय लिए, देश की सुरक्षा और आत्मरक्षा के लिए। इस देश की मूर्ख प्रजा का ध्यान बाँटने के लिए मैं पड़ोसी देश पर आक्रमण करूँगा। रूँगा रूँगा रूँगा।

एक : महाराज ऐसा मत कीजिए।

दूसरा : पड़ोसी देश हमारे मित्र हैं।

वज्रदंत : महाराज, आप बहुत चिन्तित हैं। पर चिन्ता का कोई कारण नहीं। आपके सारे विरोधी और शत्रु बंदीगृह में पड़े हैं।

हिरण्य : जब विरोधी सामने न हों, बड़ी खतरनाक बात है और सबसे बड़ी चिन्ता, प्रह्लाद अभी तक जिन्दा है।

वज्रदंत : प्रह्लाद, प्रह्लाद की माँ, हुतासन और आपके सारे

विरोधी-शत्रु बंदीगृह में बंद हैं। आप जिसे चाहें मृत्यु के घाट उतार सकते हैं।

हिरण्य : मारना मुझे केवल प्रह्लाद को है। हर तरह से मार डालने का प्रयत्न किया, लेकिन बच जाता है। यह रहस्य समझ में नहीं आता। जिसे भी उसकी हत्या करने के लिए भेजता, वह उसी का हो जाता।

वज्रदंत : मेरे पास एक उपाय है महाराज।

हिरण्य : मुँह माँगा इनाम दूंगा।

वज्रदंत : हुतासन द्वारा प्रह्लाद की हत्या कराई जाए।

हिरण्य : क्या कहा ? हुतासन द्वारा प्रह्लाद की हत्या ? प्रह्लाद की हत्या···हू हू हू हू···हुतासन द्वारा···कौन है तू ? तेरे भेजे में ये बात आई कहाँ से ? तुम पर मेरा संदेह शुरू से ही था। सबसे नीच, कमीना, महत्वाकांक्षी। समझता था, मैं तेरी चाल में फँस जाऊँगा। हुतासन प्रह्लाद की हत्या करेगा ? (आक्रमण) पहले मैं तेरी हत्या करूँगा।

[आक्रमण—अभिनय, वज्रदंत बचकर भागना चाहता है। हिरण्यकशिपु द्वारा वज्रदंत की हत्या—अभिनय।]

हिरण्य : हुतासन प्रह्लाद की हत्या करेगा। हाँ, अब करेगा। यह मेरा विचार है। मेरे अलावा यहाँ किसी और का विचार नहीं चलेगा। मेरा विचार सिर्फ मैं जानूंगा। केवल मैं हूँ, मैं ही रहूँगा। यह मुझे अकेले अपने ही दम पर करना होगा। मेरे अलावा इस रहस्य को और कोई नहीं जानेगा। तो चलूँ हुतासन के पास।

अगर हुतासन नहीं माना तो ? उस जंगली भूखे को मेरे पास देने को बहुत है। प्रह्लाद ! मैं तेरे अभिन्न मित्र, विश्वासपात्र, नरपशु से तेरी हत्या कराऊँगा··· ऊँगा···ऊँगा···ऊँगा।

[तेजी से जाने लगना। अचानक अंगरक्षक का आना।]

अंगरक्षक : दोहाई महाराज की। प्रह्लाद बंदीगृह से न जाने कैसे बाहर निकल गया। उनके साथ अनेक लोग भागे हैं।

हिरण्य : और हुतासन ?

अंगरक्षक : हुतासन कहाँ है, किसी भी सैनिक, गुप्तचर राजकर्मचारी को पता नहीं।

हिरण्य : हू हू हू हू हू।

[दृश्य परिवर्तन]

[प्रह्लाद, हुतासन, नर्तकी और कुछ युवक।]

नर्तकी : हुतासन तुम्हीं हो, मेरी आँखें धन्य हुईं। प्रह्लाद के मुख से कितनी चर्चायें सुनी थीं।

प्रह्लाद : जंगल से कब लौटना हुआ ?

हुतासन : फिर मैं जंगल नहीं गया। यहीं छिपा सब कुछ देखता रहा। सोचता था, हिरण्यकशिपु की अपार शक्ति के सामने कहीं कुछ नहीं होगा। फिर सोचने लगा हिंसा का जवाब हिंसा। पर देखा, हिंसा और दमन तो हिरण्यकशिपु के साधन। ये उसी के पक्ष जाएगा।

फिर मैं तरह-तरह के रूप बदलता रहा।

प्रह्लाद : हुतासन। शिव····।

हुतासन : वे फिर आ रहे। आने दो, इधर अँधेरे में छिप जाएँ। मैं एक-एक को देख रहा हूँ।

[सब छिप जाते हैं। सैनिकों के साथ हिरण्यकशिपु का आना।]

पहला। यही वह जगह है; जहाँ हुतासन को मैंने देखा।

दूसरा : हुतासन इधर से आया।

[हुतासन का प्रकट होना।]

हुतासन : सावधान।

[दोनों सैनिक दूर होते हैं।]

हुतासन : देखने का सुयोग आज मिला।

हिरण्य : हुतासन।

हुतासन : मैं मनुष्य नहीं जंगल-पशु। जानते हो पशु क्या होता? वह अपनी आजादी के लिए कहाँ रहता?···तूने अपने विरोधियों की हत्या कर हिंसा और दमन का जो राज शुरू किया, वहाँ मनुष्य बने रहना असम्भव था।

हिरण्य : तुझे राज्य में कोई भी ऊँचा से ऊँचा पद दे सकता हूँ।

हुतासन : थूकता हूँ तेरे राज्य पर।

हिरण्य : हू हू हू हू हू।

हुतासन : तूने देश-समाज के मूल्यों की हत्या कर सबको भ्रष्ट लालची, विलासी और कायर बना दिया।

हिरण्य : पिछड़े देश का कोई मूल्य नहीं था। लोकतंत्र मनुष्य राज्य नहीं।

हुतासन : मनुष्य की तरह है। जैसे मनुष्य में उसकी आत्मा होती है, वैसे ही लोकतंत्र में उसका मूल्य होता है। जैसे आत्मा हर शरीर के साथ नहीं होती, उसे अर्जित करना होता है, अपने कर्मों से, विश्वासों से। उसी तरह लोकतंत्र के मूल्य भी पैदा करने होते हैं।

हिरण्य : मैं तुझसे संधि करने आया हूँ।

हुतासन : कोई और बात करो।

हिरण्य : मेरा एक प्रस्ताव सुनना चाहोगे?

हुतासन : सुनाइये।

हिरण्य : सुनो, अगर तुम्हारे हाथों प्रह्लाद की हत्या हो, तो मैं इस देश का तुम्हें प्रधान मंत्री बना सकता हूँ।

हुतासन : क्या? क्या कहा?

हिरण्य : तुम्हारे द्वारा प्रह्लाद की हत्या हो, तो तुम्हें, इस देश का मैं प्रधानमंत्री बना सकता हूँ। हूँ हूँ हूँ हूँ हूँ।

हुतासन : अगर मैं प्रह्लाद को हत्या कर दूँ और आप मुझे प्रधानमंत्री न बनायें तो मैं क्या कर सकता हूँ?

हिरण्य : तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं?

हुतासन : यहाँ किसी पर विश्वास करने का कोई प्रश्न ही अब कहाँ रह गया?

हिरण्य : तुम मेरी बात पर विश्वास कर सकते हो।

हुतासन : जो अब तक था ही नहीं, वह एकाएक कहाँ से आ क्या? (विराम) अच्छा प्रह्लाद की हत्या की योजना कैसे बनेगी?

हिरण्य : योजना तुम्हारी होगी, कर्म भी तुम्हारा ही होगा।

हुतासन : योजना आपकी होगी, कर्म मेरा होगा।

हिरण्य : सुनो हत्या की मेरी योजना—कल दिन डूबने से पहले राजदरबार में प्रह्लाद का स्वागत समारोह होगा। उसे तनिक भी यह आभास नहीं होने दिया जाएगा कि उसकी हत्या होगी। तुम सब अपनी आदिवासी वेश-भूषा में अपना नृत्य-संगीत प्रस्तुत करोगे और मेरा संकेत पाते ही प्रह्लाद की हत्या कर दोगे। उस नृत्य संगीत के शोर में प्रह्लाद की हत्या हो जाएगी। सबको खाने-पीने, मनोरंजन में इतना डूबो दिया जाएगा, किसी को प्रह्लाद की चिंता भी नहीं रह जायगी।

हुतासन : योजना तेरी ही तरह कायरतापूर्ण। इसमें केवल एक सुझाव, हम सब आदिवासी नर्तक, तेरे राजदरबार के खम्भों के पीछे छिपकर खड़े रहेंगे। तेरा संकेत पाते ही हमारा विशेष संगीत बजने लगेगा और हम खम्भों के पीछे से निकलकर प्रह्लाद को इस तरह घेर लेंगे कि उसे यह आभास भी नहीं होगा कि उनकी हत्या हो रही।

हिरण्य : ये तो और भी सुन्दर। सफलता के लिए मेरी बधाई। अब मैं चलता हूँ। तैयार होइये। मेरे सारे राज्य-साधन आपके लिए।

[राजा का चला जाना। हुतासन अकेला खड़ा है। उसके चारों ओर प्रह्लाद, नर्तकी कुछ युवक आते हैं।]

प्रह्लाद : हमने सब कुछ सुन लिया हुतासन। जाओ तैयारी करो।

हुतासन : कल दिन डूबने से पहले आप महाराजा हिरण्यकशिपु के दरबार में उपस्थित होंगे, वहाँ आपका स्वागत सम्मान होगा।

प्रह्लाद : हम नहीं जानना चाहते, इस स्वागत-समारोह का प्रयोजन क्या?

नर्तकी : हम जानते हैं इस स्वागत समारोह का प्रयोजन क्या है।

प्रह्लाद : जो कोई बोलता, क्या वही उसका प्रयोजन होता?

हुतासन : मेरा प्रयोजन निश्चित है।

[जाना]

नर्तकी : हुतासन! हिरण्यकशिपु ने तुम्हारे पशु को बाँध लिया है।

प्रह्लाद : हुतासन मेरा जन्मजात मित्र है। उसी से मैंने जाना, केवल नर से पशु नहीं मारा जाता और केवल पशु से पशु नहीं मारा जाता। जो मेरा पिता हर तरह से अवध्य है, जिसे मारने वाला कोई नहीं, न कोई अस्त्र-शस्त्र, न कोई साधन, न कोई स्थिति, न देश, काल—उसे आधा नगरवासी, आधा आदिवासी, आधा नर, आधा सिंह-नरसिंह अपने नखों से ऐसे हिरण्यकशिपु का वध कर सकता।

[बौड़ी हुई माँ का आना]

कयाधू : नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। जिस विश्वासघात से हुतासन हिरण्यकशिपु की हत्या करेगा, वह हिरण्यकशिपु की

हत्या कर स्वयं उससे बढ़कर निरंकुश राजा होगा।

प्रह्लाद : ऐसा नहीं हो सकता। हुतासन को जीभ में सत्ता का रक्त नहीं लगा। मूल्यहीन शक्ति ही पशु है। जीवन-मूल्यों से जुड़कर मनुष्य नरसिंह बनता है। निरंकुश राजा को अगर कोई एक मनुष्य मारेगा तो वह भी उसी तरह उसके सिंहासन पर बैठ जाएगा। इस सिंहासन के विनाश के भीतर से एक नया लोकतंत्र उपजे, इसके लिए अनिवार्य है मनुष्य और पशु दोनों शक्तियाँ एक हों···नरसिंह।

कयाधू : आशीर्वाद।

[माँ का जाना। दृश्य में अकेला प्रह्लाद का रह जाना।]

प्रह्लाद : कौन ?

[शुक्राचार्य का आना]

प्रह्लाद : गुरु शुक्राचार्य।

शुक्राचार्य : तुम्हें मैं कहाँ-कहाँ ढूंढ़ता रहा। सुना है हिरण्यकशिपु के दरबार के अपने स्वागत समारोह में भाग लेने जा रहे हो।

प्रह्लाद : हाँ, निश्चय।

शुक्राचार्य : यही कहने आया, दरबार नहीं जाओगे।

प्रह्लाद : क्यों ? बात क्या ?

शुक्राचार्य : हिरण्य-शासन द्वारा प्रजा पर ढाये जा रहे जुल्मों के प्रति मेरे मौन की तुमने कई बार भर्त्सना की है।

प्रह्लाद : आज भी कहता हूँ, आपके अन्तःकरण पर आपका यह

मौन हमेशा भार बना रहेगा। धर्म को प्रत्येक प्रकार के अन्याय की निंदा करनी चाहिए। उसके खिलाफ खड़ा होना चाहिए।

शुक्राचार्य : यह मत भूलो, मैं हिरण्यकशिपु का गुरु हूँ।

प्रह्लाद : राजगुरु हैं, भिखारी तो नहीं ?

शुक्राचार्य : मनुष्य अर्थ का दास होता है।

प्रह्लाद : पर अर्थ किसका दास होता है ?

[मौन छा जाता है]

प्रह्लाद : सुना था, धर्म और धर्म गुरुओं का कर्त्तव्य—अपने धार्मिक कर्मों से मनुष्यों के दिलों में न्यायपूर्ण सामाजिक कार्यों के प्रति गहरी रुचि पैदा करना। लोगों को अन्याय-अत्याचार के विरोध में खड़े होने की प्रेरणा देना।

शुक्राचार्य : इस प्रश्न पर तुमसे असहमत हूँ ?

प्रह्लाद : वह असहमति क्या है, कभी कहा ?

शुक्राचार्य : उन लोगों के बारे में तुम्हें क्या कहना, जो विरोध के नाम पर शासन से कम अत्याचारी नहीं ?

प्रह्लाद : मैं हूँ उनके विरोध में। पर आप किसके विरोध में हैं !

शुक्राचार्य : सब स्वतंत्र हो जाएँ, मैं इसके विरोध में हूँ ?

प्रह्लाद : आप धार्मिक हैं ?

शुक्राचार्य : सब स्वतंत्र नहीं हो सकते।

प्रह्लाद : केवल कुछ लोग ही स्वतंत्र हो सकते हैं ? वाह रे तेरा धर्म !

शुक्राचार्य : हरकोई एक-दूसरे से पराधीन है। तुम अपनी आस्था-विश्वास के अधीन हो या नहीं ?

प्रह्लाद : नहीं। मेरी आस्था मेरी स्वतंत्रता है। मेरा विश्वास मेरी मुक्ति है···। बताओ, मुझे अपने राजा से क्यों बचाना चाहते हो ?

शुक्राचार्य : उसकी कृपाण से तुम्हें कोई नहीं बचा सकता।

प्रह्लाद : मैं बचकर क्या करूँगा ? सब कुछ तो मेरा है। हिरण्य-कशिपु शत्रु है, पर मेरा शत्रु। इस पूरे जगत में हूँ मैं।

शुक्राचार्य : मृत्यु भी ?

प्रह्लाद : हां, मृत्यु भी मेरी है।

शुक्राचार्य : मृत्यु के बाद ?

प्रह्लाद : मृत्यु के बाद हो का तो यह जीवन है। न जाने कितनी बार मर चुका हूँ।

शुक्राचार्य : मृत्यु के बाद जीवन नहीं है।

प्रह्लाद : जो पदार्थवादी हैं उनके लिए। तभी वे सब कुछ इस तरह भोग लेना चाहते हैं, जैसे कहीं कुछ उनका नहीं।

शुक्राचार्य : अच्छा, अब विदा लेता हूँ।

[जाने लगना]

प्रह्लाद : क्या वहाँ नहीं होंगे ?

शुक्राचार्य : तुम्हारा मृत्यु नहीं देख सकता।

[जाना]

प्रह्लाद : सुनो शुक्राचार्य। सुनो मेरे पिता। इस देश के राजा सुनो। सुनो साथिया ! हर मनुष्य के पास स्वधर्म नामक एक सम्पदा। उसी धर्म में उसकी मुक्ति। तुम अपना स्वधर्म करो। हम अपने स्वधर्म के साथ हैं।

पाँचवाँ अंक

[राज दरबार का दृश्य। प्रह्लाद का अकेले आना।]

प्रह्लाद : पिताश्री के चरणों में प्रणाम।

हिरण्य : तुम्हारे साथ कोई और तो नहीं।

प्रह्लाद : मेरे साथ समस्त भू मंडल। दृश्य-अदृश्य सब के साथ।

हिरण्य : अध्यात्म की भाषा अपने घर बोलना।

प्रह्लाद : क्या यह मेरा घर नहीं ? आप मेरे पिता नहीं ? ये सब मेरे बंधु-बांधव।

हिरण्य : सब तेरे शत्रु।

प्रह्लाद : हाँ, सब मेरे।

[विराम]

हिरण्य : मेरी सत्ता में विश्वास न रखने का मतलब—ईश्वर में अविश्वास।

प्रह्लाद : अपने राजनीतिक प्रयोजन के लिए ईश्वर के नाम का दुरुपयोग मत करो।

हिरण्य : अविश्वास का दंड मृत्यु दंड।

प्रह्लाद : तेरा दुख असह्य है।

हिरण्य : मुझे कोई दुःख नहीं।
प्रह्लाद : तेरे दुःखों को मैंने भोगा।
हिरण्य : मैं सर्वशक्तिमान, मैंने सारे सुखों को भोगा।
प्रह्लाद : काश, किसी एक भी सुख का अनुभव किया होता।
हिरण्य : बंद करो ये बातें।
प्रह्लाद : तेरा क्रोध सत्य, तेरी हिंसा सत्य, पर इसके बाद भी एक परम सत्य, जिससे भयभीत हो इतनी शक्ति एकत्र कर ली कि शेष सब असुरक्षित।
हिरण्य : ऐ हे हे हे। संगीत आरम्भ करो।

[संगीत उभरना। उसी पदताल पर हुतासन खंभे के पीछे से प्रकट होने की तैयारी करने लगता है। और प्रह्लाद के संवाद से प्रेरित उस सुरताल के अनुरूप नरसिंह का रूप धारण करना शुरू करता है।]

प्रह्लाद : हुतासन जड़ नहीं,
वनस्पति नहीं,
पशु नहीं,
सबका योग नरसिंह ! स्वाहा !!
सब : स्वाहा !

[इस बोल के साथ उन्मत्त हिरण्यकशिपु अपनी नंगी तलवार भाँजता हुआ नृत्य वत गतियाँ लेने लगता है।]

हिरण्य : चल तेरे सब पाप दूर कर दूँ।
सब : स्वाहा !

[प्रह्लाद के वही बोल]

सब : स्वाहा !
हिरण्य : मैं जगत् में प्रकाशित।
सब : स्वाहा।
प्रह्लाद : न मिलने का यह दुःख केवल मेरा ही नहीं, ये अनन्त में व्याप्त।
सब : स्वाहा।
हिरण्य : अपने ईश्वर को पुकार। वह आये तुझे बचा ले।
सब : स्वाहा।
प्रह्लाद : हे रुद्र ! हे परम विच्छेद-वेदना !
तुम्हारी कैसी मूर्ति रंजना !

[उसी बोल के साथ नरसिंह रूप में हुतासन का सामने आना। हिरण्यकशिपु का उसे देखते ही क्रोध और भय से काँपने लगना। संगीत उभरकर सहसा टूट सा जाता है।]

प्रह्लाद : जीवन उत्सव के अधिदेवता। हममें से प्रत्येक के लिए उत्सव सफल करो। अपने को क्षुद्र जानकर प्रतिदिन जो दुःख भोगा, हमारा परित्राण करो। तुममें हमारा नमस्कार सत्य हो।

[हिरण्यकशिपु और नरसिंह में युद्ध—अभिनय।]

प्रह्लाद : हे पिता तुम प्रणम्य हो। तुम कारण बने, जिससे मनुष्य पशु से अलग हो फिर मनुष्य हो गया। हे हिरण्य आसक्त ! तुम्हें भी अपने अहं से मुक्ति मिल रही। विश्वास करो, इसके अलावा और कोई उपाय नहीं था। (विराम) हे दक्षिण मुख···हे दक्षिण मुख। तुम्हीं

सबका परित्राण करते। निरंकुश शक्ति के दुःख और विच्छेद से बचाते। हे नरसिंह, बिना किसी राग-द्वेष के तुम्हारा यह युद्ध, यह वध मुक्तिदायी।

[युद्ध करते-करते नरसिंह हिरण्यकशिपु को दबोच लेने का नाट्य। जाँघ पर उसे लिटाकर अपने वघनख से उसके वक्षस्थल को चीरकर मारने का नाटक। पीछे से नाटक के अन्य सारे पात्र प्रकट होते हैं।]

प्रह्लाद : भविष्य में इसकी याद हमें डरायेगी।

सब : डरायेगी।

प्रह्लाद : यद्यपि यह मर गया फिर भी भविष्य में इसकी याद हमें रहेगी।

सब : यह जिंदा हो सकता।

प्रह्लाद : सत्ताधारी के कान में धीरे से कहेगा—हो जाओ निर्मम। ऐसा शासन अब और आसान, एक हिरण्यकशिपु ऐसा कर चुका है।

[गायन]

वह शक्तिमती था किन्तु
काल है महाबलो
वह अवध्य था किन्तु काल है महाबली।
वह था किन्तु काल है
वह था
किन्तु काल है महाबली।

[पर्दा]

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल और उनके नाटक

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल का जन्म उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के एक गाँव जलालपुर में ४ मार्च, १९२७ ई० को हुआ था। पिता श्री शिवसेवक लाल बड़े परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेदारी के दबाव से परेशान एक निम्न मध्यमवर्गीय हिन्दू गृहस्थ थे। गाँव उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल की आम विपत्तियों से मुक्त नहीं था। मसलन कुआनों, मनवर और सरजू नदी के पानी का सर्वनाश करते हुए घरों में घुसना। गरीबी, महामारी और अभाव सामान्य स्थितियाँ हैं इस जिले की। इस वातावरण ने संघर्ष, स्वाभिमान और लोकोन्मुखता के साथ-साथ डॉ० लाल में लोकगीतों, धुनों और जातीय तथा सामाजिक उत्सवों, पर्वों, लीलाओं, नाट्यों और नृत्तों के प्रति एक विशेष प्रकार की सजगता पैदा की। नाटककार लाल के मनोभूमि की बनावट को समझाने के लिए और कुछ हद तक नाटकों को समझने के लिए भी यह जानकारी आवश्यक है। वस्तुतः पिछड़ी और अनुसूचित जातियों और जनजातियों के नृत्तों, गीति नाट्यों और रूपकों से जो परिचित नहीं है, वे नाटकों की लोकधर्मी भारतीय परम्परा को नहीं समझ सकते और न उसके नाट्य धर्मी स्वरूप को। डॉ० लाल के नाटकों में यह संस्कार एक दबाव के रूप में नहीं बल्कि कैटालिटिक एजेन्ट के रूप में विद्यमान है।

उनकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव के पास के कस्बे बहादुर पुर में और प्राइमरी स्कूल के बाद पिपरा गौतम के मिडिल स्कूल में हुई। कक्षा आठ के बाद तो उनका बाल विवाह हो गया। सेकसरिया कालेज बस्ती से इन्टर

करने के बाद लक्ष्मीनारायण लाल इलाहाबाद आ गए। इलाहाबाद विश्व-विद्यालय से एम० ए० और डी० फिल० करने के साथ ही साथ संघर्ष और साहित्य सृजन का क्रम चलता रहा। बी० ए० के दाखिले के लिए प्रवेश शुल्क आदि के अनिवार्य आवश्यकता के दबाव में उनके पुत्र आनंद-वर्धन के अनुसार सर्व प्रथम उपन्यास 'रक्तदान' का सृजन हुआ। नाटक-कार लाल का पहला एकांकी इलाहाबाद विश्वविद्यालय की हिन्दी मैगजीन में 'ताजमहल के आँसू' नाम से छपा और हिन्दी-विभाग की परम्परा को तोड़कर विद्यार्थियों द्वारा दीक्षांत समारोह के अवसर पर खेला भी गया। नाटक और कथा साहित्य की शुरुआत का यह प्रारम्भिक समय था परंतु यह शुरुआत क्रमश साहित्य में केन्द्रित होती गयी।

अध्ययन के बाद कुछ दिनों तक एस० एम० कालिज चंदौसी में अध्यापन कार्य करने के बाद डॉ० लाल इलाहाबाद के सी० एम० पी० डिग्री कालेज में हिन्दी विभाग में प्राध्यापक हो कर आ गये। १९५५ से १९६४ ई० तक वे इलाहाबाद में रहे। ये वर्ष इलाहाबाद के सबसे अधिक सक्रिय और सर्जनात्मक वर्ष थे। निकष और नयी कविता आदि पत्रिकाओं के अतिरिक्त परिमल और प्रगतिशील लेखकों की गतिविधियों का यह महत्त्वपूर्ण दौर था। 'नयी कहानी' और नये नाटक के आन्दोलन का भी यह दौर था। इन वर्षों में डॉ० लाल ने नाटक लिखे और खेले। रंगमंच को विकसित और प्रोत्साहित करने में डॉ० लाल का इन वर्षों में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। 'नाट्य केन्द्र' की स्थापना से इस प्रकार के गतिशील और सक्रिय आन्दोलनों की ओर दिशा प्राप्त हुई। सी० एम० पी० डिग्री कालेज छोड़ने के बाद कुछ दिनों तक आल इण्डिया रेडियो के लखनऊ केन्द्र में प्रोड्यूसर भी रहे, परन्तु उसे भी उन्होंने तुरन्त छोड़ दिया। १९६४ में इलाहाबाद छोड़कर वे दिल्ली चले गये और दिल्ली में संघर्ष और स्वत्व रक्षा का एक नया दौर प्रारंभ हुआ। दिल्ली में रहकर डॉ० लाल ने महानगर की जिस जिन्दगी का साक्षात्कार किया उस टकराहट से ही उन्होंने 'व्यक्तिगत', 'अब्दुल्ला

दीवाना', 'करफ्यू', 'मिस्टर अभिमन्यु' और 'नरसिंह कथा' जैसे नाटकों का सृजन किया। अब वे दिल्ली में ही हैं।

डॉ० लाल का जीवन प्रारम्भ से ही रास्ता खोजने का रहा है। उन्हें राजमार्ग नहीं मिला और न पगडंडी ही मिली। उन्होंने रास्ता देखा और बनाया। एक प्रकार से कहा जा सकता है कि उन्होंने अपने को और रास्ते को आविष्कृत किया। मंथन और आविष्कार ने उनके जीवन में एक अद्भुत प्रकार का स्वाभिमान (अहंकार नहीं) और खतरा उठाने की शक्ति उत्पन्न की जो अस्तित्व की शर्तों पर भी बनी रही। मनुष्य की विकृति को देखते हुए भी वे मानवीयता के विश्वास से डिगे नहीं। और इस आस्था ने उनको शक्ति और विश्वास प्रदान किया। राष्ट्रीय संकट के क्षणों में डॉ० लाल राष्ट्र की मुख्यधारा के साथ ही रहे। उनका पक्ष जनता का पक्ष था। वस्तुत: वे विपक्ष के नहीं 'जनपक्ष' के रचनाकार हैं। साहित्य और कर्म दोनों से उन्होंने इसे प्रमाणित किया है। जयप्रकाश नारायण पर लिखी उनकी जीवनी और 'नरसिंह कथा' इसका प्रमाण है।

इतने वर्षों से लगातार लिखते रहने वाले डॉ० लाल ने भारतीय संस्कृति, कला और सामाजिक जीवन को निरन्तर देखते, भोगते, विचारते और मथते हुए या मथे जाते हुए जो कुछ उपलब्ध किया है वही उनकी सृजन यात्रा भी है। उन्होंने केवल नाटक, उपन्यास और कहानियाँ ही नहीं लिखी हैं बल्कि समय-समय पर इन विषयों पर भी लिखा है। और अन्तत: सर्जक का लिखना और महसूस करना उसकी रचना में ही है। विद्या या ज्ञान या जानना यही है जो मुक्ति दे—लेखक और उसकी कृति के पाठक, श्रोता और दर्शक को। 'मिस्टर अभिमन्यु' नाटक आज के समाज और व्यक्ति बल्कि समाजहीन व्यक्ति और व्यक्तिहीन समाज को उजागर करके ही त्रासद और चिन्तनीय बनाता है और वर्तमान से अतीत और भविष्य की ओर रोशनी फेंकता है। इस अर्थ में राजन् एक मिथक भी है और एक यथार्थ भी और एक वृहत् अर्थ में उसका प्रश्न लक्ष्मी-नारायण लाल का आत्मचिन्तन भी है। लेखक के मूलभूत प्रश्नों यानी

यक्ष प्रश्नों से जूझने की नियति ही उसे ऐसे उत्तरों की ओर ले जाती है जो उत्तर लेखक और पाठक या सामाजिक दोनों को परिशोधित करते हैं। और यह आविष्कार या परिशोधन प्रक्रिया उनके नाटकों में बदलती गयी है। वे आस्थावान व्यक्ति हैं। पारिवारिक सूत्रों के अनुसार वे 'दुर्गा सप्तशती' का नियमित पाठ करते हैं, जो उनके स्वाभिमान और स्वत्व रक्षा का मेरी समझ से शायद प्रमुख आधार है। इस आस्था ने उनको भारतीय मनीषा को वर्तमान के संदर्भ में परखने और फिर आविष्कृत मनीषा से वर्तमान को देखने की दृष्टि दी। भूमि की पहचान से रंग को देखने से ही रंगभूमि के सही अर्थ की पहचान होती है। रंगभूमि की यही पहचान उन्हें भारतीय कथाओं और मिथकों के इस्तेमाल और समझ की ओर ले गयी। परन्तु इस समझ का यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि डॉ० लाल ने नाटक की लोक धर्मिता और नाट्य धर्मिता के अद्भुत घोल की अपनी दक्षता छोड़ दी। वस्तुतः लोकधर्मिता का तर्क खोज और शोध दोनों का तर्क है। मिथ जब वर्तमान पर रोशनी फेंकता है तो वर्तमान का चेहरा प्रायः बेनकाब हो जाता है। 'नरसिंह कथा' में वर्तमान के चेहरे की बेनकाबी का यह प्रयोग उद्घाटन और उपाय के साथ इस प्रकार की तानाशाही प्रवृत्तियों का सामान्यीकरण नाटक को नया अर्थ और देता है। डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने अपने साहित्य के इतिहास में महत्त्वपूर्ण टिप्पणी की है कि "लक्ष्मीनारायण लाल और मोहन राकेश हिन्दी नाट्य लेखन के क्षेत्र में नयी पीढ़ी के सशक्त प्रतिनिधि हैं। लाल का नाटक वैविध्य पूर्ण रहा है।...लाल के एक दर्जन से अधिक पूर्णकालिक नाटक हैं जिनमें कई प्रकार के कथानक और नाट्य विधान हैं। वे शब्द के सच्चे अर्थ में नाटक हैं, मंच पर बार-बार उनका अभिनय हुआ है। रंगमंच के साथ क्रिया-प्रतिक्रिया में लक्ष्मीनारायण लाल ने बराबर सीखा है और नाट्य लेखन में अपने ढंग से प्रयोग करते रहे हैं।" (हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ० २८७)। मोहन राकेश के 'आधे अधूरे' और लक्ष्मीनारायण लाल के 'मिस्टर अभिमन्यु' को एक साथ रखकर देखने से यह निसंकोच

कहा जा सकता है कि 'मिस्टर अभिमन्यु' न केवल उससे अधिक अर्थ गर्भ और व्यापक हैं बल्कि अन्य भाषाओं के कई नाटकों से अच्छा है। क्योंकि यह नाटक महज हमारे समाज की वर्तमान त्रासदी नहीं है बल्कि मिथ के प्रयोग के कारण मानवीय त्रासदी है, जो कई प्रकार के सांस्कृतिक प्रश्न उत्पन्न करती है। मिस्टर अभिमन्यु के संदर्भ में श्रीकांत का यह कथन बहुत महत्त्वपूर्ण है कि "मिस्टर अभिमन्यु के माध्यम से उठाया गया प्रश्न, समसामयिक बहुत से नाटकों की बुनियाद से ज्यादा संगत और सार्थक है। वह बहुत से लोगों का, शायद हममें से प्रत्येक का प्रश्न हो सकता है। क्या हम भी किसी ऐसे चक्रव्यूह में नहीं घिरे हुए हैं, जिससे बाहर निकलने की पर्याप्त इच्छा और संकल्प हमारे पास नहीं हैं। हमारी त्रासदी यह नहीं कि हम अभिमन्यु हैं, बल्कि यह है कि हम अभिमन्यु नहीं हैं। हम मिस्टर अभिमन्यु हैं।" इस नाटक की ही तरह 'नरसिंह कथा' में भी पौराणिक कथा को आधार बनाया गया है। परन्तु इस नाटक के प्रश्न और इसके उत्तर भिन्न हैं। इसमें तानाशाही और अहमन्य सत्ता से जो मनुष्य को पशु में बदलती है मुक्ति का उपाय है। पशु को मनुष्य में बदलने के साथ ही साथ पशुत्व से बचने का विकल्प इसकी कथा है। इस दृष्टि से यह नाटक मिस्टर अभिमन्यु का आस्थावान उत्तर भी है। मिस्टर अभिमन्यु की समस्या का यह एक उत्तर है।

हिन्दी नाटकों का उद्भव और विकास

भरत ने नाट्यशास्त्र में नाटक के चार मुख्य अंगों का सम्बन्ध चारों वेदों से मानते हुए इतिहास के संयोग के कारण नाटक को पाँचवाँ वेद माना गया है। ऋग्वेद से पाठ (कथोपकथन) सामवेद से नृत्य गीत (संगीतादि) यजुर्वेद से अभिनय (यज्ञ के अवसरों पर होने वाले उत्सवों का संकेत है) और अथर्ववेद से रस को ग्रहण करने का यह कथन एक ओर जहाँ नाटकों की उत्पत्ति की ओर संकेत करता है वहीं दूसरी ओर नाटकों के सैद्धांतिक स्वरूप की भी व्याख्या करता है। 'नाट्यशास्त्र' संरचनात्मक दृष्टि से

सम्पूर्ण ग्रंथ है जिसमें रचना से प्रयोग की समाप्ति और आलोचना तक का विधिवत उल्लेख है। भारतेन्दु ने इसे कुशीलवशास्त्र की संज्ञा दी है। संस्कृत की नाट्य परम्परा और लोक नृत्य नाट्य परम्परा के साथ ही साथ प्राकृत और अपभ्रंश काव्यों और नाटकों की परम्पराओं के परिप्रेक्ष्य ने हिन्दी के नाटकों के विकास को देखना चाहिए। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'नाटक अथवा दृश्यकाव्य' जो, हिन्दी का पहला आलोचनात्मक शोधपरक लेख है, में ७५ संस्कृत नाटकों का उल्लेख करने के बाद भाषा पर विचार करते हुए लिखा है कि "हिन्दी भाषा में वास्तविक नाटक के आकार में ग्रन्थ की सृष्टि करते हुए पचीस वर्ष से विशेष नहीं हुए। यद्यपि नेवाज कवि का शकुन्तला नाटक, वेदान्त विषयक भाषा ग्रंथ सभयसम नाटक, व्रजवासी दास के प्रबोध चन्द्रोदय नाटक के भाषा अनुवाद नाटक नाम से अभिहित हैं किन्तु इन सबों की रचना काव्य की भाँति है अर्थात् नाटक रीत्यानुसार पात्र प्रवेश इत्यादि कुछ नहीं है। भाषा कविकुलमुकुर माणिक्य देवकवि का देवमाया प्रपंच नाटक और श्री महाराज का शिराज की आज्ञा से बना हुआ प्रभावती नाटक तथा श्री महाराज विश्वनाथ सिंह रीवाँ का आनन्दरघुनन्दन नाटक यद्यपि नाटक रीति से बने हैं किन्तु नाटकीय यावत नियमों का प्रतिपालन इनमें नहीं है और छन्द प्रधान ग्रन्थ हैं। विशुद्ध नाटक रीति से पात्र पेशादि नियम रक्षण द्वारा भाषा का प्रथम नाटक मेरे पिता पूज्यचरण श्री कविवर गिरिधरदास जी का (नहुष) है।" इसी लेख में भारतेन्दु ने दूसरा नाटक राजा लक्ष्मण सिंह कृत 'शकुन्तला' नाटक और तीसरा भारतेन्दु कृत 'विद्या सुन्दर' और चौथा लाला श्रीनिवास दास कृत 'तप्तासंवरण' माना है। भारतेन्दु के ही अनुसार 'हिन्दी भाषा में जो पहला नाटक ११ संवत १९२५ में बनारस थियेटर में धूमधाम से खेला गया वह शीतला प्रसाद त्रिपाठी कृत जानकीमंगल था।'

वस्तुतः हिन्दी के नाटकों का लोकोन्मुखी और जागरणकारी स्वरूप भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से ही प्राप्त हुआ। उन्होंने संस्कृत नाटकों के सभी १० प्रकारों में नाटक लिखा इन नाटकों में सामान्य जीवन के कुजड़िन, गड़े-

रिया, साधु आदि विभिन्न क्षेत्रों के लोगों का पात्र के रूप में प्रयोग किया जो नाटक के सामाजिक कलेवर का विस्तार और परिवर्तन था। खड़ी बोली का पहला नाटक भारतेन्दु ने ही लिखा। और उनके नाटकों में एक प्रकार का सामाजिक सांस्कृतिक मन्तव्य पाया जाता है। सत्य हरिश्चन्द्र, रणधीर प्रममोहनी, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति और अंधेर नगरी उनके प्रसिद्ध मौलिक नाटक हैं। सत्य हरिश्चन्द्र १८८४ ई० तक हिन्दी क्षेत्र के सभी बड़े नगरों यहाँ तक कि बलिया के ददरी मेले तक में खेला जा चुका था। नाटक और रंगमंच दोनों दृष्टियों से इस काल में सामान्य जीवन को आधार बनाकर सही रंगदृष्टि का विकास किया गया। भारतेन्दु अंग्रेजी और बँगला के नाटकों और नाट्य नियमों से परिचित थे और अपने नाटकों से उन्होंने हिन्दी नाटक में बँगला के नवीन नाटकों को ध्यान में रखते हुए कई प्रयोग किया। कम पात्रों लोक धुनों और शैलियों के प्रयोग से निर्मित 'अन्धेर नगरी' अपने वर्तमान अर्थों के उपवहन की दृष्टि से इस काल की सभी भाषाओं में लिखा हुआ अन्यतम नाटक है। हिन्दी के नाटकों का यह स्रोत पारसी थियेटर कम्पनियों के प्रभाव से सूख गया। भारतेन्दु युग में उनके मण्डल के सभी लेखकों, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, लाला श्री निवासदास ने नाटक लिखे और इन सभी नाटकों के विषय सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक हैं।

भारतेन्दु युग के बाद नाटक के विकास की यह गति अवरुद्ध हो जाती है। रंगमंच की सहज चेतना और लोक धर्मी नाट्य को पारसी थियेटर कम्पनियों की आंधी भ्रष्ट और पराङ्मुख कर देती है। वर्तमान के आत्म साक्षात्कार और समय को परिभाषित करने की जो प्रवृत्ति भारतेन्दु और उनके साथियों ने विकसित की थी वह प्रवृत्ति पारसी थियेट्रिकल कंपनियों के मनोरंजनवादी दृष्टि से अवरुद्ध हो गयी। अतिनाटकीयता और मनोरंजनात्मकता के साथ-साथ संगीत और नृत्य इन कम्पनियों द्वारा खेले जाने वाले नाटक का प्रमुख तत्त्व था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और जयशंकर प्रसाद दोनों ने इस प्रवृत्ति की निंदा की है परन्तु जाने अनजाने दोनों ही

इस प्रवृत्ति के कुछ तत्त्वों का उपयोग करते हैं। डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने 'हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास' में लिखा है कि भारतेन्दु के बाद भी हिन्दी क्षेत्र में व्यावसायिक और शौकिया दोनों प्रकार के रंगमंच का अस्तित्व बना रहा। १८८६ के आसपास कानपुर में कई नाट्य मंडलियाँ बनीं। इलाहाबाद में दो मण्डलियाँ स्थापित हुईं—श्री रामलीला नाटक मण्डली (१८८६) तथा हिन्दी नाट्य समिति (१६०८)।' काशी और कलकत्ता में भी माधव शुक्ल और बाबू ब्रजचन्द की प्रेरणा से कई नाट्य मण्डलियाँ बनीं। इन मण्डलियों द्वारा 'सीय स्वयंबर', 'महाभारत पूर्वार्ध' (माधव शुक्ल) तथा महाराणा प्रताप आदि नाटक खेले गये। बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक दशकों में नारायण प्रसाद बेताब, आगाहश्र कश्मीरी, राधेश्याम कथावाचक, तुलसीदत्त शैदा, दुर्गाप्रसाद गुप्त, आनन्द प्रसाद कपूर आदि ने धार्मिक, पौराणिक और इश्किया नाटक लिखे। 'जै रामायण नाटक', 'मीठा जहर', 'खूबसूरतबला', 'सुनहला विष', 'अभिमन्यु वध' आदि नाटकों में करुण और शृङ्गार रस की प्रमुखता मिलती रही है। इन नाटकों ने भारतेन्दु की परम्परा को स्तम्भित किया परन्तु कुछ लोक रुचियों और लोक परम्पराओं का जीवन्त उपयोग भी इन नाटकों में पाया जाता है। पुनर्जागरण की चेतना का संकुचित रूप भी इनमें मिलता है। परन्तु यथार्थ का व्यंग्यात्मक स्वरूप या इतिहास का वर्तमान के संदर्भ में प्रयोग इनमें नहीं है। यह कार्य जयशंकर प्रसाद से ही प्रारम्भ हुआ था।

जयशंकर प्रसाद ने हिन्दी नाटकों को वैचारिक आयाम ही नहीं प्रदान किया बल्कि इतिहास और कल्पना को राष्ट्रीय जागरण के अनुकूल प्रयुक्त किया। संस्कृत और पाश्चात्य नाट्य दृष्टियों का रचनात्मक प्रयोग जयशंकर प्रसाद में मिलता है। प्रसाद ने राष्ट्रीय जागरण के उपदेशात्मक और मनोरंजन पक्ष के स्थान पर विमर्शात्मकता को महत्त्व दिया। हिन्दी रंगमंच की स्वस्थ और सृजनशील एवं प्रयोगोन्मुख धारा के अभाव से प्रसाद ने नाटक को पाठ्य और नाट्यगुणों के समन्वय के आधार पर विक-

सित किया। 'प्रायश्चित' और 'सज्जन' से ध्रुवस्वामिनी तक उनके नाटकों में एक प्रकार का विकास क्रम मिलता है। स्कंदगुप्त, अजातशत्रु, चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी प्रसाद के सूक्ष्म केन्द्रित नाटक हैं। राष्ट्रीयमुक्ति और संस्कृति बोध का अद्भुत समन्वय इनके नाटकों में है। ध्रुवस्वामिनी में तो प्रसाद ने धर्म, राजनीति, पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था आदि में कई प्रकार के प्रश्न चिह्न लगाए हैं। इस नाटक में रंगमंचीय दृष्टि का सधा हुआ सजग संकेत है। नाट्य धर्मिता का प्रमाण रंगमंच पर पात्रों की स्थिति और निष्क्रमण का संकेत है। कम पात्रों का प्रयोग और गहरे अर्थों का संकेत इसकी विशेषता है। वस्तुतः चन्द्रगुप्त में सांस्कृतिक उत्तर है परन्तु ध्रुवस्वामिनी में समस्या का राजनैतिक उत्तर भी है। प्रसाद ने रंगमंच निबंध में नाटक के अनुकूल रंगमञ्च की आवश्यकता को महत्त्वपूर्ण माना है और इब्सन आदि के पश्चिमी प्रभावों को भारतीय दृष्टि से हेय माना है। परन्तु इब्सन, शा आदि के प्रभाव नाटक पर पड़े हैं।

जयशंकर प्रसाद के बाद हिन्दी नाटक के क्षेत्र में देशभक्ति प्रधान, सांस्कृतिक नाटकों का एक दौर आता है और दूसरी ओर समस्यामूलक सुधारवादी दौर प्रारम्भ होता है। हरिकृष्णप्रेमी और लक्ष्मीनारायण मिश्र इसके प्रतिनिधि नाटककार हैं। प्रेमी का 'आन का मान' रक्षाबन्धन और लक्ष्मीनारायण मिश्र का 'हिन्दूर की होली' इसकी प्रतिनिधि रचनाएँ हैं। प्रसाद के समय में ही १८३० के आसपास हिन्दी नाटक करवट ले रहा था। ध्रुवस्वामिनी उस करवट की संतुलित अभिव्यक्ति है। भुवनेश्वर ने इन दिनों नाटक लिखना प्रारंभ कर दिया था। भुवनेश्वर ने स्त्री पुरुष संबंधों में बदलाव का अद्भुत प्रयोग किया है जो प्रसाद की तुलना में ठीक उलटा है। संबंधों के बिखराव की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण है। प्रसादोत्तर नाटककारों में सेठ गोविन्ददास, जगदीशस्वरूप माथुर, उपेन्द्र नाथ अश्क, राम कुमार वर्मा का भी नाम आता है। इन रचनाकारों ने दोनों ही प्रकार के नाटक लिखे हैं। और नाटकों में अभिनेयता के कथोपकथनात्मक तत्व का महत्व अधिक है जो इन नाटकों को प्रसाद परम्परा से अलग नहीं करता

है। उपेन्द्रनाथ अश्क का 'सूखी डाली', 'तौलिए', कैद और भुवनेश्वर का 'तांबे का कीड़ा', कारवाँ, श्यामा आदि अपनी प्रकृति, संरचना, मन्तव्य आदि से भिन्न है। यथार्थ के उद्‌घाटन की प्रवृत्ति इन नाटकों में पाई जाती है। जगदीशचन्द्र माथुर का 'कोणार्क', 'पहला राजा' रामकुमार वर्मा का चारुमित्रा, रंगमंचीय दृष्टि से सफल नाटक हैं। परन्तु जैसा कि मैंने कहा कि ये नाटक एक प्रकार से प्रसादीय दृष्टि के प्रसार हैं परिवर्तन नहीं।

भुवनेश्वर और उपेन्द्रनाथ अश्क के नाटकों के बाद हिन्दी में पश्चिमी नाटकों का प्रभाव कई रूपों में पड़ता है। हिन्दी क्षेत्र में रंगमंच आंदोलन स्वतन्त्रता के बाद काफी गतिशील होता है और मानव संबंधों में भी परिवर्तन होता है। मनुष्य की आशा और आकांक्षाओं के दायरे में भारतीय स्वतंत्रता का प्रतिफल देखा जाता है। भुवनेश्वर के एकांकियों के प्रयोग अभिनेयता के उद्‌घाटन पर आधारित ड्राइंग रूम नाटक की ओर उन्मुखता को प्रमाणित करते हैं। इसी सन्दर्भ में मोहन राकेश, लक्ष्मी नारायण लाल का 'आषाढ़ का एक दिन', 'मादा कैक्टस' प्रकाशित होता है। १८५७ से १८६० ई० के आसपास ये नाटक भी आते हैं। हिन्दी नाटक के क्षेत्र में इन दोनों ही नाटककारों का योग अन्यतम है। मोहन राकेश ने अर्ध ऐतिहासिक कथाओं के आधार पर 'लहरों के राजहंस', 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक लिखा जो मानव मन की गहराइयों को अभिव्यक्त करता है। 'आधे अधूरे' आधुनिक जीवन की विवशता का उन का सबसे अच्छा नाटक है वैसे ही जैसे डॉ० लाल का मिस्टर अभिमन्यु। डॉ० लाल कुछ अर्थों में मोहन राकेश से सफल नाटककार हैं। मादा कैक्टस जो सबसे पहले 'निकष' में छपा था से लेकर 'नरसिंह कथा' तक डॉ० लाल ने मनुष्य को हर पहलू से देखने की चेष्टा की है और मनुष्य के संदर्भ में निरंतर अपने को और भारतीय समाज को परिभाषित करने की कोशिश की है। 'दूसरा दरवाजा' उनके महत्वपूर्ण एकांकियों का संकलन है, जिसमें स्त्री पुरुष संबंधों से लेकर राजनैतिक जीवन और नौकरशाही के चरित्र पर भी नाटक हैं। इनमें निश्चय ही 'व्यक्तिगत' अच्छा नाटक

है। 'अब्दुल्ला दीवाना', 'करफ्यू' आदि इसी खोज के परिणाम है। डॉ० लाल रंगमंच से निरंतर सीखते रहे हैं। इस दृष्टि से वे शाश्वत शिष्य और शाश्वत गुरु हैं। नाटकों में वे रिहर्सल के दौरान भी अपेक्षित परिवर्तन करते हैं। वस्तुतः डॉ० लाल स्वयं रंग निर्देशक और रंग कर्मी रहे हैं। इसलिये पाठ्य, अभिनय, रंगपीठ, रंगकर्म और रस डॉ० लाल के नाटकों में एक इकाई बन कर आते हैं। डॉ० लाल के अतिरिक्त हिन्दी नाटक में सुरेन्द्र वर्मा और डॉ० विपिन कुमार अग्रवाल का उल्लेख किया जा सकता है। सुरेन्द्रवर्मा मोहन राकेश की परम्परा के नाटककार हैं। आठवाँ सर्ग, नींद क्यों रात भर नहीं आती, आदि कथा प्रधान नाटक हैं। 'तीन नाटक' संकलन में संकलित नायक खलनायक विदूषक, मानव नियति का महत्त्वपूर्ण नाटक है। डॉ० विपिन अग्रवाल 'एब्सर्ड' नाट्य परम्परा के प्रमुख नाटककार हैं। डा० विपिन का 'तीन अपाहिज' और 'लोटन' (नाटक' हरकतों से अर्थ पैदा करने वाले नाटक हैं। इनमें पाठ्य-गुण नहीं प्रयोग गुण हैं। भीष्म साहनी का 'हानूस' प्रगतिशील चेतना की दृष्टि से लिखा गया अच्छा नाटक है। इधर नुक्कड़ नाटकों का प्रचलन भी हुआ है परन्तु इन नाटकों के पीछे दृष्टिकोण का अभाव और प्रचारात्मकता अधिक पायी जाती है। फिर भी नुक्कड़ नाटकों ने सामाजिक यथार्थ को वाणी देने में सफलता प्राप्त की है और इस क्रम में अपने को सुधार भी रहे हैं।

हिन्दी नाटक का यह विकास क्रम उसकी उपलब्धियों और संघर्षों का प्रमाण कम इतिहास अधिक है। परन्तु नाटक की इस यात्रा में संकट भी कम नहीं रहे हैं। सत्ता नाटकों के प्रदर्शन पर प्रायः रोक लगाती रही है और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद यह प्रवृत्ति बढ़ी है जो नाटक की प्रभविष्णुता, सामाजिक अर्थवत्ता और जनोन्मुखता का प्रमाण है। 'नरसिंह कथा' समाज के लिए है। इस पर भी रोक लगी थी क्योंकि यह व्यापक स्तर पर जनता की दृष्टि से लिखा गया है। लोकतन्त्र की रक्षा इस नाटक का मुख्य फल है फलतः जहाँ भी इस पर संकट

उत्पन्न होगा वहाँ यह नाटक एक हकीकत की तरह लोगों को विचलित करेगा।

'नरसिंह कथा' की वस्तु योजना

वास्तविक स्थिति और पौराणिक घटना को नाटक की 'वस्तु' में परिवर्तित करके उसे 'भारत देश की समस्या' के साथ-साथ मानव मात्र की समस्या के रूप में प्रस्तुत करना ही 'नरसिंह कथा' की विशिष्टता है और यही विशिष्टता उसे सनातन का अर्थ देती है। इस नाटक में उठाए गये प्रश्न आज के भारत के हैं और इसी आधार और तर्क से आज के मनुष्य के हैं क्योंकि 'हिरण्यकशिपु' एक प्रकार का परिवर्तन है जो साधनों, शक्तियों और सत्तामदत्व के संयोग से कहीं भी हो सकता है और हिटलर, मुसोलिनी आदि के रूप में हमारे नजदीकी इतिहास में रहा भी है। और जहाँ हिरण्यकशिपु होगा वहीं प्रह्लाद जैसे साधन हीन जनता के प्रेमपात्र और स्वतंत्रता कामी भी होंगे। हर हिरण्यकशिपु और प्रह्लाद अपने देश काल के अनुसार भिन्न होंगे परन्तु उनका सजातीयत्व वही रहेगा। इन दोनों प्रवृत्तियों और वास्तविकताओं—वास्तविकता इसलिए कि इस प्रकार के संघर्ष के बाद मनुष्य के बीच एक अवतार होता है जो उसकी पूर्णता की ओर प्रस्थान की जय यात्रा को प्रमाणित करने के साथ अशिव और शिव की धारणाओं सामाजिक मूल्यों की प्रतीक्षा करता है—पौराणिक आख्यान और प्रतीक कथा के रूप में प्रयोग करके डॉ० लाल नाटक में एक प्रकार का सनातनत्व ही नहीं पैदा करना चाहते हैं बल्कि वे नाटक में भारतीय दृष्टि से 'रसत्व' की सृष्टि करना चाहते हैं। लोक धर्मी कथा को नाट्यधर्मिता से जोड़कर सही अर्थ में रंगभूमि का प्रयोग करना चाहते हैं। नाटक की भूमिका के अनुसार यह नाटक १९७५ में आपात्काल के दौरान पहली बार लिखा गया ओर वह अंधकार इस नाटक की प्रेरणाशक्ति भी है। लेखक इस काल में जयप्रकाश नारायण के काफी निकट था। डॉ० लाल ने जय प्रकाश नारायण पर पुस्तक भी लिखी है।

यह नाटक लिखा पहले गया और अभिनीत बाद में हुआ। लेखक ने प्रथम प्रारूप के रंग प्रयोग के अनुभव से १९८० से १९८३ ई० के दौरान इस पर नये सिरे से काम किया। इस प्रकार से यह परिशोधित नाट्य प्रारूप है।

इस नाटक की कथावस्तु नृसिंह अवतार की कथा है। मूल कथा में 'हिरण्यकशिपु' एक अत्याचारी शासक है और उसका पुत्र प्रह्लाद तथा प्रह्लाद के पक्षधर यानी सत्य ओर धर्म की पक्षधर सारी प्रजा हिरण्यकशिपु के विरोधी। प्रह्लाद अपने पिता के अन्याय का निरोध करता है। वह उसकी सर्वशक्तिमत्ता और अहंकार को ईश्वर के समक्ष निरर्थक मानता है। प्रह्लाद की ईश्वर पर आस्था है, वह प्रभु का भक्त है और सांस्कृतिक मूल्यों का अधिष्ठान है, साथ ही साथ सत्य और न्याय के लिए अपने पिता का विरोध करता है। हिरण्यकशिपु प्रह्लाद को अपना सबसे बड़ा शत्रु मानता है और उसके मारने के अनेक उपाय करता है। अपनी बहन होलिका को, जिसे कि यह वरदान प्राप्त था कि वह आग में नहीं जल सकती है, प्रह्लाद को लेकर आग की लपटों में बैठाता है परंतु प्रह्लाद बच जाता है। प्रह्लाद ईश्वर को सर्वरक्षा समर्थ और सर्व व्यापक मानता है। ईश्वर की सत्ता को कुम्हार के द्वारा बर्तनों को पकाने के लिए बनाये गये आँवें के भीतर से बच कर निकले हुए बिल्ली के दो बच्चों से प्रमाणित करता है। हिरण्यकशिपु के अतिरिक्त शेष सभी प्रह्लाद के साथ हैं। प्रह्लाद की माँ प्रह्लाद को समझाती है और अन्ततः उसका ही साथ देती है। अत्याचार बढ़ता जाता है जनता त्राहि-त्राहि करने लगती है। प्रह्लाद को पकड़कर केले के खंभे से बाँध दिया जाता है ओर अन्ततः उसका पिता इस संशय और अविश्वास से कि सभी राज कर्मचारी प्रह्लाद से मिले हुए हैं और उनको मारना नहीं चाहते अपनी कृपाण से स्वयं मारने का निश्चय करता है। हिरण्यकशिपु की इस राक्षसी प्रवृत्ति का कारण यह है कि उसे यह वरदान प्राप्त है कि वह दिन और रात में घर और बाहर, नर या पशु किसी से अवध्य है। उसे कोई नहीं मार सकता है वह सबको मार सकता है और प्रह्लाद चूँकि कहता है कि ईश्वर सर्वत्र

हैं और दीन हीनों की रक्षा करते हैं। जब उनका भक्त या संकटग्रस्त प्राणी एक मात्र विश्वास के बल पर अपने पूरे अस्तित्व से याद करता है उसकी रक्षा वे किसी भी समय किसी स्थल पर करते हैं।

प्रह्लाद द्वारा बार-बार यह प्रमाणित कर दिये जाने से हिरण्यकशिपु का भय बढ़ता जाता है और दूसरी ओर प्रह्लाद का पक्ष प्रबल होता जाता है। प्रजा का विश्वास प्रह्लाद और उसके विचारों पर बढ़ता जाता है। ईश्वर के प्रति अपरिमित आस्था हिरण्यकशिपु के निरीश्वर वादी आस्था-हीन सिद्धांत को समाप्त करती है। अतः हिरण्यकशिपु यह कह कर कि मैं अब तुमको स्वयं अपनी कृपाण से मारूंगा और देखता हूँ कि तुम्हारी रक्षा ईश्वर कैसे करता है। प्रह्लाद का यह कथन था कि वह इसी खंभे से प्रकट होगा। और वही हुआ भी जो प्रह्लाद का कथन था। जैसे ही हिरण्यकशिपु तलवार उठाकर प्रह्लाद को मारना चाहता है वैसे ही खंभा फट जाता है और नरसिंह रूप में ईश्वर प्रकट होते हैं जो अपनी जाँघ पर लिटाकर हिरण्यकशिपु को अपने हाथ के पंजों से उसका हृदय विदीर्ण कर देते हैं। देश काल, और अस्त्र से शस्त्र से मुक्त होने आदि की सीमा की रक्षा भी होती है और वह मर जाता है। प्रह्लाद के विश्वास की रक्षा होती है वह प्रार्थना ही करता रहता है। प्रजा मुक्त हो जाती है और देवतागण उसकी स्तुति करने लगते हैं।"

इस पौराणिक कथा को लगभग उसके मूल स्वरूप में ग्रहण करते हुए डॉ० लाल ने उसके अर्थ का विस्तार कई रूपों में किया है। कथा के रूप की रक्षा के साथ-साथ उसके अर्थ को पाश्चात्य भौतिकवादी संस्कृति के प्रभाव से उत्पन्न अनास्था और पशुत्व को जो लाभ केन्द्रित व्यवस्था और दृष्टि का लाजिमी परिणाम है तथा आस्था केन्द्रित श्रेयवादी भारतीय संस्कृति के द्वन्द्व के रूप में वे विस्तारित करते हैं। आपात्काल और तानाशाह का प्रतीक हिरण्यकशिपु, तथा जनता की स्वतंत्र कामना का प्रतीक प्रह्लाद हो जाता है। एक अर्थ में इसे असद और सद् प्रवृत्तियों के संघर्ष के रूप में माना जा सकता है। नाटक के पहले अंक की शुरुआत रंग

भूमि के मध्य में रखे हुए नगाड़े की ध्वनि से होती है। उसके बाद नाट्य शास्त्रीय पद्धति से 'आश्रावणा' के बाद नट नटी शैली में नाटक के आश्रय और मंतव्य को व्यक्त करने वाले प्रह्लाद के मित्र जय और विजय दो पात्र आते हैं।

नाट्यापह्नुति की तरह से अभय का आह्वान करते हुए "नाटक के नाम और अभय के अभिनय का संकेत करते हुए चले जाते हैं। और इस कथा को सनातन बताकर नाटक को प्रतीक रूपक बना देते हैं। 'प्ररोचना' में जय और विजय तानशाही प्रवृत्तियों और धार्मिक भावनाओं के राजनीतिकरण को शक्ति और सत्ता के भूख की प्रवृति से जोड़कर उसे हिरण्यकशिपु कहते हैं। जैसे—

जय : समझते हो हिरण्यकशिपु प्रह्लाद कथा पौराणिक है। वे सत-युग के थे आज नहीं ?

विजय : आज भी हैं वे हमारे बीच।

जय : दोनों में लड़ाई अब तक जारी है।

विजय : जहाँ सत्ताशक्ति की भूख है वहीं हिरण्यकशिपु का अदृश्य सिंहासन है।

जय : हाँ, वो रहता हमारी इच्छाओं में।
साकार होता हमारी कल्पनाओं में।
उसका झूठ हमारा सत्य।

विजय : उसने हमारी धार्मिक भावनाओं का राजनीतिकरण किया। हमारी जड़ता अर्थहीनता को रुकने के लिये नये से कर्मकाण्ड शुरू किया।

जय : हमें झूठे विचार दिये।
पड़ोसी हमारा शत्रु है।
देश की अखंडता संकट में है।

जय और विजय नर्तकी के डर से भेष बदल कर भागना चाहते हैं पहचाने जाने पर जय असलियत को छोड़ने की प्रवृत्ति को राष्ट्रीय संकट

का कारण कहता है और प्रकारान्तर से यह भी कहता है कि निरंकुश, आततायी, नास्तिक और झक्की राजा जैसा कि हिरण्यकशिपु है—सबसे पहले बुद्धि नाश करता है। मनुष्य का विवेक नष्ट करता है। इसी क्रम में गुप्तचर विभाग का आला अफसर वज्रदंत आता है, जो मन से राजा की मौत का उपाय जानना चाहता है, परंतु बाहर से अपनी पोल खुलने के डर से राजा की इच्छा की घोषणा करता है कि "राजा के अलावा यहाँ और कोई शक्ति नहीं। राजा के अलावा किसी और की ताकत पर विश्वास करना सरासर राजद्रोह है। यहाँ किसी भी अपराध की सजा मौत।" वज्रदन्त की यह घोषणा हिरण्यकशिपु का ही नहीं तानाशाह मात्र के शासन के मूल आदेशों के चरित्र को स्पष्ट करता है और विशेष विषय तथा स्थिति दोनों को सामान्यीकृत करता है। सामाजिक के मन में इस प्रकार के सन्देश एक प्रकार की मूल्यांकन बुद्धि का विकास भी करते हैं। जय विजय 'प्ररोचना' के तर्क से नाटक की शुरुआत की घोषणा करते और कहते हैं कि :—

जय : नाटक शुरू हो गया।

विजय : एक ओर हिरण्यकशिपु, जो किसी तरह से मारा नहीं जा सकता। उसके पास इतनी शक्तियाँ सब साधनों का स्वामी।

जय : दूसरी ओर प्रह्लाद सीधा सादा, साधनहीन प्रेममय। जो युद्धरत है पर घृणा नहीं जिसमें जो हिरण्यकशिपु जैसे बर्बर, निरंकुश से लड़ रहा स्वतंत्रता के लिए।

'प्ररोचना' की समाप्ति के बाद 'नाट्यशास्त्र' के नियमों के अनुसार पूर्व रंग का कार्य समाप्त होता है और यहाँ भी दोनों एक साथ यह कह कर कि 'देखें यह यही नरसिंह कथा' मंच से हट जाते हैं। 'दृश्य परिवर्तन' पूर्व रङ्ग की समाप्ति का संकेत करता है। इसी दृश्य परिवर्तन से प्रह्लाद के अभिन्न मित्र हुतासन का प्रवेश होता है। नाटक के पूर्वरंग में इस हुतासन का औचित्य जय द्वारा हुतासन को प्रह्लाद के अभिन्न मित्र के रूप में बताया गया है और उसे ही 'नरसिंह' के रूप में प्रतिष्ठित

किया गया है। हुतासन में पशुओं में श्रेष्ठ सिंह के तत्त्व और नरतत्त्व को जोड़ने का कार्य प्रह्लाद ने किया। हुतासन के पशुत्व यानी मूल्यहीनता को समाप्त करके देश की स्वतन्त्रता की रक्षा और अत्याचार तथा अन्याय के प्रतिरोध के लिए उदासीनता पलायन और निराशावादिता से मुक्त करना ही प्रह्लाद का कार्य है। हुतासन राज्य से लेकर विभिन्न संस्थानों के बारे में जो सवाल उठाता है वे सवाल भारतवर्ष के संदर्भ में अभी भी सत्य हैं। संस्थानों के द्वारा भाषा, बोली और संस्कृति का विरूपीकरण, मूल दृष्टि से काटने का प्रयत्न आर्य अनार्य, शूद्र सवर्ण आदि के उच्छेदन बीजों के बपन का संकेत हुतासन के द्वारा किया गया है। यह कार्य भी तानाशाह से जुड़कर परिणामात्मक और परिभाषात्मक बन जाता है।

मुक्तिबोध ने अंधेरे में कविता में बौद्धिक लोगों को क्रीत दास कहा है। नाटक में शुक्राचार्य स्वयं अपने को बिका हुआ कहते हैं और अंतिम समय तक हिरण्यकशिपु और प्रह्लाद दोनों से जुड़े रहते हैं। हुतासन यथार्थ दृष्टा है और संकल्प बद्ध है। वह कहता है कि "जब हमारा अपना कुछ नहीं, उसी शून्य में पैदा हुआ हिरण्यकशिपु"। इस अंक का निम्नलिखित उद्धरण इस प्रकार से कई सन्दर्भों में महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह प्रवृत्तिगत भी है और कथावस्तु धर्मी भी।

हुतासन : गुरुकुल की याद मत दिलाओ। शुक्राचार्य गुरु नहीं, हिरण्यकशिपु का खरीदा गुलाम। शिक्षा के नाम पर हमारे चित्त में बर्बादी के बीज बोया। शूद्र और अनार्य सिद्धांत गढ़े। अपनी भूमि से हमें उखाड़ने के बीज मंत्र बोये। जो अपना, वह बुरा, जो पराया वही अच्छा। जिसने ये विकार फैलाये ऐसे पतित को गुरु कहना—ऐसे गुरुकुल में आग लगाकर मैंने ठीक किया।

प्रह्लाद : गुरुकुल हमारी स्मृति, उसे हमें भूलना नहीं। राजा यही चाहता है, हम अपने आप से कट जाएँ।

हुतासन : हमारा अपना पन कहाँ हमारी भाषा में, बोली में, खानपान,

पहनावा, भावना, विचारना, कहाँ, किसमें मेरा अपनापन ? कोई पूछता, क्यों नहीं अपने आप से—मैं कौन ? ये राजा कौन ? कैसे बना ? कहाँ से आया ? प्रश्न करना राजद्रोह क्यों ?

इसी अंक में प्रह्लाद ने हुतासन पशुत्व को नरत्व से परिशोधित करते हुए कहा कि 'आर्य-अनार्य, जाति-धर्म की आपसी फूट, नीच-ऊँच, सवर्ण-शूद्र के भेद में से आया यह तानाशाह'। और प्रह्लाद सामाजिक मूल्य की धारणा के लिए श्रद्धा को एक आवश्यक मूल्य मानता है। शून्य से परिवर्तन नहीं हो सकता है। आस्थाकामी ही परिवर्तन कर सकता है। स्वधर्मे निधनं श्रेयः प्रह्लाद का संदेश है और यही वह हुतासन को भी समझाता है। प्रह्लाद हुतासन को समझा रहा होता है कि प्रह्लाद की माँ 'कयाधू' हिरण्याक्ष की वाराह द्वारा मृत्यु की सूचना लेकर आती है। हुतासन वाराह बनकर हिरण्यकशिपु को मारना चाहता है। उसे बन्दी बनाने के लिए सैनिकों सहित हिरण्यकशिपु हुतासन कहता है कि "हम जंगली, शूद्र, दलित अनार्य, जिन्हें न जाने कितने नाम दिये हम एक दिन वाराह बन कर तुझ पर टूटेंगे। प्रह्लाद कहता है वाराह क्यों, नरसिंह क्यों नहीं। और अंततः प्रह्लाद के यह समझाने पर कि क्रिया पर ध्यान दो प्रतिक्रिया पर नहीं हुतासन बचकर निकल जाता है। हिरण्यकशिपु और प्रह्लाद की यहाँ बातचीत होती है, जो पौराणिक कथा और तानाशाह दोनों के प्रसंग से उचित है और कथा तथा प्रसंग दोनों को एक ही अर्थवान इकाई में बाँधती है। हिरण्यकशिपु और प्रह्लाद के बातचीत के बाद राजा वज्रदंत को राज पंडितों को गधों पर घुमाने का आदेश देता है। और 'प्रत्यक्ष' को ही प्रमाण मानता है। विचलित और परेशान स्थिति में वज्रदंत के साथ शुक्राचार्य का प्रवेश होता है। हिरण्यकशिपु अपने आपको तपस्या द्वारा अर्जित शक्ति को प्रह्लाद द्वारा ईश्वर द्वारा प्रदत्त बनाये जाने से चिंतित है क्योंकि ऐसी स्थिति में ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता स्थापित होती है। शुक्राचार्य जो बौद्धिकता के प्रतीक हैं और जिन्हें हुतासन 'खरीदा हुआ गुलाम' कह चुका है। विश्वास दिलाते हैं कि देश में प्रचार कार्य चल रहा है। प्रचार के जिन प्रमुख मंत्रों का प्रयोग है उसमें राज्य की सर्वशक्तिमत्ता और सुख को जीवन का लक्ष्य बताया गया है जो पश्चिम के राजनैतिक सिद्धांतों और सुखोपभोगवादी दृष्टि की ओर संकेत करता है और यह संकेतित करता है कि तानाशाही प्रवृत्ति के मूल में राज्य का सर्वसत्तावाद और सुख प्रधान भौतिक दृष्टि है इसके बाद पहला अंक एक गीत समाप्त होता है जो 'राज्य पद' का मखौल है और सुखवादी दृष्टि के परिणामों को प्रस्तुत करती है।

दूसरा अंक राजा की भयग्रस्त मनस्थिति और मूर्खता के प्रमाण से प्रारम्भ होता है। अपशकुन निवारण के लिए जय विजय और राजकर्मचारी मिलकर राजा का विवाह घड़े से करवाते हैं और फिर मूर्ख राजा उस नवविवाहित घड़े की हत्या करता है इतने में उसकी पत्नी कयाधू आती है और विवेक भ्रष्ट हिरण्यकशिपु स्मृति भ्रंश के कारण महारक्षक को जेल में डलवा देता है। अविश्वास पर आधारित तानाशाह शत्रु और मित्र में कोई भेद नहीं कर पाता है। वह एक दुष्चक्र में फँस जाता है। सर्व शक्तिमत्ता का दम्भ अन्ततः सबसे अलगाव का कारण भी बनता है। राजा घड़ेरूपी नवविवाहिता के मारने के कर्मकांड को पूरा करना चाहता है कयाधू उसे निरीह और अबोध प्रजा का प्रतीक मानकर रक्षा करती है। शुक्राचार्य राजा के कार्य को विशेषाधिकार मानता है। वह राजा की इच्छा को सर्वोपरि मानता है। कयाधू शुक्राचार्य को गुरु पद का कलंक कहती है और यह भी कहती है कि इस प्रकार के आचार्यों के कारण ही इस प्रकार का झक्की, निरंकुश और खब्ती राजा प्राप्त हुआ है। घड़े के मारे जाने के बाद भगवती (कुम्हारिन) आती है और बिल्ली के बच्चे की घटना सुनाती है जो भय की वृद्धि का कारण बनता। भगवती ही यह भी बताती है कि प्रजा के भीतर के जलते हुए आँवें से प्रह्लाद और हुतासन रूपी दो बच्चे पैदा हुए हैं। और अन्ततः हिरण्यकशिपु उसे पहचान लेता है कि यह भगवती कयाधू है। और उसे लगता है कि वह भी उसकी विरोधी है।

यही दूसरा अंक समाप्त होता है।

तीसरा अंक विषकन्या राजनर्तकी को प्रह्लाद को मार डालने के लिए भेजने के उपक्रम और विश्वासहीनता की वृद्धि से प्रारम्भ होता है। हिरण्यकशिपु यह मानता है कि उसे ज्योतिषियों ने धोखा दिया है और हर क्षेत्र में उसका विरोध बढ़ रहा है। गुरु शुक्राचार्य प्रभावहीन हो रहे हैं। इसी में कयाधू के विद्रोह के कारण जय विजय प्रसंग से आपातकाल की घोषणा का उल्लेख किया गया है इसी अंक में शुक्राचार्य पिता-पुत्र में समझौते की कोशिश करते हैं। इस कोशिश के क्रम में प्रह्लाद भारतदेश की परम्परा और जातीय स्मृति की रक्षा की बात करता है जो नाटक को तत्काल वर्तमान में प्रतिष्ठित कर देता है और मानवीय समस्या के आयाम को राष्ट्रीय समस्या में बदल देता है साथ ही साथ बन्दी गृहों में कैद लोगों की मुक्ति की प्रारम्भिक शर्त को आपातकाल के सन्दर्भ से जोड़ भी देता है। शुक्राचार्य के यह प्रश्न करने पर कि कौन भारत देश ? अंग्रेजों से पहले का ? मुसलमानों से पूर्व का ? प्रह्लाद उत्तर देता है कि :—

"भारत देश, जो हमारे स्मृतियों में है। जो हमारे निश्वास, उच्छ्वास आशा, निराशा, हार-जीत, अंधकार-प्रकाश, के क्रम में बँधा है। जहाँ शक्ति कभी अकेली नहीं रही। जहाँ शक्ति और सत्ता को कभी निरंकुश नहीं होने दिया गया। जहाँ शक्ति को कभी अकेली, एकांगी नहीं रहने दिया उसे सदा बाँधा है लोक से। शक्ति और श्रद्धा, श्रद्धा और विश्वास का एक जोड़ा बनाया गया जैसे - राम का सीता से, पार्वती का शिव से, धरती का आसमान से, जल का वायु से, नाश का निर्माण से।

देश की बौद्धिक शक्ति के पतन के प्रतीक शुक्राचार्य प्रसाद के नाटकों के पुरोहित से भिन्न मुद्रा में दिखाये गए हैं। यद्यपि जिन मूल्यों का स्रोत उन्हें माना गया है उसमें किसी प्रकार का कोई विवाद नहीं है। शुक्राचार्य की सहमति और विवशता तानाशाही प्रवृत्तियों के उदय और विद्यमानता दोनों के कारण के रूप में है। प्रह्लाद को बन्दी बनाये जाते हुए शुक्राचार्य को रंगमंच पर केवल अवसन्न और चिंतित दिखाया गया है। इसके बाद

हिरण्यकशिपु द्वारा भेजी गयी राजनर्तकी प्रह्लाद को सब भेद बतलाकर प्रह्लाद का चरण रज अपने माथे पर लगाती है। इतने में शुक्राचार्य का प्रवेश होता है और शुक्राचार्य नर्तकी द्वारा गुरु कहे जाने पर इस सिद्धांत के साथ कि 'जो किसी से भी बिका हो वह गुरु नहीं' अपने को गुरु कहने से मना करते हैं जो उनके ग्लानि का द्योतक है और हिरण्यकशिपु के अकेले पड़ते जाने का प्रमाण भी। दूसरे अंक के अन्त में कयाधू का विद्रोह और प्रजा का समर्थन है और तीसरे में गुरु शुक्राचार्य का अपने गुरुत्व से ग्लानि एवं राजा का उनके प्रभाव की शक्ति को समाप्ति की घोषणा है। यद्यपि इससे अधिक परिवर्तन शुक्राचार्य में अन्त तक नहीं होता है चौथे अंक में प्रह्लाद उन्हें पदार्थवादी कहकर दृष्टिकोण विशेष के परिणाम को पश्चिमी संस्कृति के भौतिकवादी पक्ष की भारत की मूल्यवादी अध्यात्म केन्द्रित दृष्टि की तुलना में हेय और नाशोन्मुख मानता है। शुक्राचार्य हिरण्यकशिपु का विरोध भी नहीं कर सकते हैं क्योंकि राज्य को सर्वोपरि मानते हैं। राज्य को मूल्य मानने का यह परिणाम भी है परन्तु प्रह्लाद को मरता हुआ भी नहीं देखना चाहते।

चौथा अंक प्रह्लाद के बन्दी के रूप में अपने पिता के सामने जाने से प्रारम्भ होकर बुआ होलिका द्वारा भस्म किए जाने से बचने और हिरण्यकशिपु द्वारा अपनी कृपाण से मारने के निश्चय पर समाप्त होता है। इस अंक के प्रारम्भ में प्रह्लाद द्वारा राजपथ चौराहों और सड़कों और गलियों में खुदवाये गये उन सिद्धान्तों का उल्लेख है जो तानाशाह मात्र और हिरण्यकशिपु दोनों के लिये खतरनाक हैं। नाटककार प्रह्लाद के माध्यम से यह स्थापना करता है कि :—

सारा जगत एक प्राणवान व्यक्ति है, जिसके तुम अंग मात्र हो, तुममें और किसी भी अन्य मनुष्य में कोई अन्तर नहीं।'''जो निरंकुश है वह पशु है।'''हर तानाशाह हत्या से ही जन्म लेता है और हत्या से ही उसका अन्त होता है।

इस घोषणा से डरा हुआ हिरण्यकशिपु प्रजा के इन शब्दों को सुनकर

उसे नमकहराम का विशेषण देता है क्योंकि उसने प्रजा के लिए अमुक अमुक किया है। पड़ोसियों के हमले से रक्षा और आन्तरिक संकट से बचाव के तर्क से प्रजा की रक्षा के नाम पर प्रजा निरंकुश सत्ता का आरोपण यह तानाशाही की प्रक्रिया है। मैंने किया यह अहंकार नाटक के इस अंक के अनुसार राजा को देश का पर्यायवाची बनाता है, राजा देश हो जाता है और फिर देश सेवा राजा की सेवा, देश के लिए मरना राजा के लिए मरना का पर्याय बनकर एक प्रकार की निरंकुशता को जन्म देता है जिसका अन्त वही है जो इस नाटक का है। इस अंक में नरसिंह की कथा को तर्क संगत और संतोषजनक सिद्ध करने के लिए अति नाटकीयता और पौराणिकता को त्यागकर एक प्रकार के राजनैतिक कौशल की कल्पना की गई है वज्रदंत की सलाह पर डुंडा की असफलता के बाद राजा हुतासन द्वारा प्रह्लाद के मरवाने की योजना बनाता है और न जानते हुए विवेक भ्रष्टता के तर्क में उस कौशल में फँसता है जो हुतासन की इच्छा के अनुकूल है। इसमें वज्रदन्त, राजनर्तकी आदि सभी शामिल हैं। जयशंकर प्रसाद ने ध्रुवस्वामिनी नाटक में इसी प्रकार के एक भिन्न कौशल का प्रयोग शकराज की हत्या के लिये किया था यह अंक इस प्रकार से चरम सीमा से पहले का अंक है या इसे 'नियताप्ति' भी कह सकते हैं। इस अंक के अन्त में कयाधू की चिन्ता अत्यन्त महत्वपूर्ण चिन्ता है। वह चिन्ता है मूल्य की। हिंसा और छद्म के माध्यम से हिरण्यकशिपु की हत्या से उससे बढ़कर पैदा होगा यह उचित नहीं है परन्तु प्रह्लाद उसे समझाता है—

"ऐसा नहीं हो सकता। हुतासन की जीभ में सत्ता का रक्त नहीं लगा। मूल्य हीन शक्ति ही पशु है। जीवन मूल्यों से जुड़कर मनुष्य नरसिंह बनता है। निरंकुश राजा को अगर कोई एक मनुष्य मारेगा तो वह भी उसी तरह उसके सिंहासन पर बैठ जाएगा। इस सिंहासन के विनाश के भीतर से नया लोकतन्त्र उपजे, इसके लिए अनिवार्य है मनुष्य और पशु दोनों शक्तियाँ एक हों ''नरसिंह। कयाधू—आशीर्वाद।

उपर्युक्त उद्धरण में हुतासन को जीवन मूल्यों का प्रतिनिधि स्वीकार

किया गया है और यह स्थापना की गई कि इससे जुड़कर ही 'नरसिंह' बनता है। यह एक प्रकार की मूल्यात्मक स्थापना है और नाटक की पूरी संरचना में इस प्रकार की मूल्य दृष्टि एक विधान की तरह अनुस्यूत है। इसके भीतर से लोकतन्त्र की सम्भावना को भी एक मूल्य माना गया है। बल्कि लोकतन्त्र के लिए हिरण्यकशिपु का मारा जाना और नरसिंह का अवतरित होना आवश्यक है।

पाँचवें अंक का प्रारम्भ प्रह्लाद और हिरण्यकशिपु के संवाद से होता है। जिसमें हिरण्यकशिपु कहता है कि "मेरी सत्ता में विश्वास न रखने का मतलब—ईश्वर में अविश्वास और वह प्रह्लाद को अविश्वास करने पर मृत्युदंड के लिए तैयार रहने को कहता है। प्रह्लाद के स्वाहा कहने पर उसे जहाँ एक हुतासन खंभे को फाड़कर निकलने की तैयारी करता है वहीं दूसरी ओर हिरण्यकशिपु अपनी नंगी तलवार भाँजता हुआ नृत्यवत गतियाँ लेने लगता है और प्रह्लाद स्वाहा, स्वाहा करता है और हिरण्यकशिपु अन्त में कहता है कि 'अपने ईश्वर को पुकार वह आये तुझे बचा ले' और जब प्रह्लाद को मारने चलता है तब हुतासन प्रकट होता है और राग-द्वेष हीन युद्ध को प्रह्लाद मुक्तदायी मानता है।

नाटक के अन्त में भरतवाक्य के रूप में प्रयुक्त काल के महाबलीत्व की स्थापना के पूर्व एक प्रकार के खतरे की भावना से सदा सजग रहने का संकेत करते हुए ही नाटक समाप्त होता है। तानाशाही और तानाशाही से मुक्ति का संघर्ष दोनों ही नाटक को संभावना के छोर पर छोड़कर नाटक सामाजिकों के लिए सम्पूर्ण नाटक को संदेश बना देता है। जैसे—

प्रह्लाद : भविष्य में इसकी याद हमें डरायेगी।

सब : डरायेगी।

प्रह्लाद : यद्यपि वह मर गया फिर भी भविष्य में इसकी याद ही हमें रहेगी।

सब : यह जिन्दा हो सकता है।

प्रह्लाद : सत्ताधारी के कान में धीरे से कहेगा हो जाओ निर्मम। ऐसा शासन अब और आसान, एक हिरण्यकशिपु ऐसा कर चुका है।

वस्तु संरचना और पात्र योजना

नाटक में नर्तकी को शामिल करके कुल ग्यारह पात्र हैं। इनमें से शुक्राचार्य को छोड़कर शेष सभी पात्र मूलतः प्रह्लाद पक्ष के हैं। नर्तकी राजनर्तकी होते हुए पहले अंक में अवश्य हिरण्यकशिपु के समर्थन में लगती सी है परंतु उसके बाद से तो उसका स्वभाव भी बदलता गया है। तीसरे अंक के प्रारंभ में वह हिरण्यकशिपु से यही कहती है कि जानती हूँ महाराज सोचन विचारना राजद्रोह है। और प्रह्लाद को विषकन्या होने के कारण दिये गये दायित्व को प्रह्लाद को बता देती है। उसके प्रति भक्तिभाव से झुक जाती है और चरण रज को अपने मस्तक से स्पर्श करती है। हिरण्यकशिपु से सम्बन्ध पात्रों और व्यक्तियों और सलाहकारों में प्रह्लाद के स्वरूप और आचरण के कारण ही नहीं बल्कि अत्याचार और अविश्वास के कारण भी लोग का हृदय परिवर्तन होता है। नाटक की भाषा में लोग अपने को पहचानने लगते हैं। अपने को पहचानने पर इस नाटक में बहुत जोर दिया गया है।

कयाधू

प्रह्लाद की माँ कयाधू का चरित्र प्रारंभ से ही पुत्रवत्सलता और प्रजावत्सलता का है। परन्तु घड़े से विवाह प्रसंग के बाद राजा के बढ़ते हुए तानाशाही रवैये और प्रजा पर अत्याचार तथा पागलपन और मर्यादा हीनता से वह अन्ततः हिरण्यकशिपु की शत्रु हो जाती है क्योंकि हिरण्यकशिपु ने घड़े से शादी करके और उसकी हत्या करके मूर्खता का नहीं बल्कि विवाह संस्थान मात्र का अपमान किया था। वह अबोल संस्कारित घड़ा प्रह्लाद और हुतासन की माँ का प्रतीक ही नहीं कयाधू के तर्क से अबोल और

नासमझ प्रजा है। वह हिरण्यकशिपु के यह कहने पर कि 'मैं संस्कार वंस्कार कुछ नहीं मानता' अत्यन्त तर्क और तेवर के साथ पूछती है और शुक्राचार्य को बिका हुआ कहती है।

कयाधू : "जो बोल न सके, अपनी रक्षा न कर सके राजा का धर्म उसकी भाषा बनकर सुरक्षा दे।"

शुक्राचार्य : राजा का हर कार्य विशेषाधिकार का होता है।

कयाधू : किस शास्त्र में लिखा।

शुक्राचार्य : अगर नहीं लिखा तो लिख दिया जायगा।

कयाधू : तुम लिखोगे शास्त्र, बिके खरीदे हुए···?

भगवती के रूप में ही यही कयाधू तानाशाही और लोकतंत्र के संघर्ष की भूमिका भी प्रस्तुत करती है। वह हिरण्यकशिपु को ईश्वर की संतान जो उसे किसी भी प्रकार पसंद नहीं है न तो पदार्थवादी नास्तिकता के तर्क से और न सर्वशक्ति मत्ता के तर्क से निम्नलिखित उदाहरण भगवती के चरित्र और अभिनायकवाद के भीतर से पनपते हुए प्रजातंत्र के स्वरूप की व्याख्या करता और दर्शक पक्ष से सांत्वना का कार्य करता है। जैसे—

भगवती : ज्यों ज्यों अविश्वास और अहंकार का अवां ठंडा होता गया, त्यों त्यों विश्वास का घड़ा पककर पात्र हो गया।

हिरण्य : यह किसकी भाषा ?

भगवती : यह सब कुछ वही जलता हुआ अवां है। हम इसमें घड़े हैं। हम सबसे मिलकर जो एक बन रहा है, उसका हमें पता नहीं। जिस दिन पता चल जाता, उसी दिन उसका नाम ईश्वर हो जाता।

कयाधू का हुतासन और प्रह्लाद को तिलक करना विद्रोह की परिणति का चरम रूप है और प्रजातन्त्र की सही शुरुआत का प्रतीक भी है। कयाधू का चरित्र इस प्रकार से नाटक में क्रमशः विकसित और परिवर्धित दिखाया गया है। अन्त में तो वह अपने पति की मृत्यु को भी स्वीकार कर लेती है परन्तु हुतासन के निरंकुशत्व से डरती है लेकिन प्रह्लाद के

आश्वासन से आशीर्वाद देकर चली जाती है। चौथे अंक के बाद वह मंच पर नहीं आती है परन्तु इतने ही समय में नाटक को वह लक्ष्य की ओर पहुँचाती है तथा प्रजा के हित या लोकतंत्र को एक मूल्य के रूप में स्थापित करती है।

हिरण्यकशिपु

हिरण्यकशिपु, प्रह्लाद, शुक्राचार्य और हुतासन इस नाटक के प्रमुख चरित्र हैं जिनकी चरितार्थता में पात्रों का अभिनय, रंगमंच की सफलता और रस की प्रतिष्ठा संभव है। वस्तुतः नाटक की संरचना में सभी पात्र एक व्यापार के अन्तर्गत जिसे नाट्य व्यापार और कर्म व्यापार कह सकते हैं सम्बद्ध होते हैं। पारस्परिक सम्बद्धता ही नाटक की सफलता का लक्षण है। प्रत्येक चरित्र का चारित्रिक गुण सम्बद्धता के तर्क से संचालित होता है—नाटक में अभिनय व्यापार और संरचना में भाषिक सम्बद्धता से। नेता के साथ और विरुद्ध का धर्म रस के परिपाक की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

हिरण्यकशिपु तानाशाही प्रवृत्तियों का प्रतीक ही नहीं बल्कि पदार्थवादी, आस्थाहीन और प्रत्यक्षवादी संस्कृति का प्रतिनिधि भी है। वह ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं करता है और अपने को ईश्वर भी मानता है। पहले अंक के अन्त में वह हिरण्याक्ष के मारने वाले की खोज में आता है और हुतासन को बन्दी बनाने का प्रयत्न करता है उसी संदर्भ में वह कहता है कि 'मैं ईश्वर हूँ; मैं सम्पूर्ण हूँ; मैं सर्वशक्तिमान हूँ ? ईश्वर का यह विरोध मात्र ईश्वर का ही विरोध नहीं है हिरण्यकशिपु इस प्रकार की शास्त्र परम्परा का विरोधी है। पश्चिम के आधुनिक पदार्थवादियों और भौतिक वैज्ञानिकों की तरह से वह कहता है कि :—

"पृथ्वी और वैकुंठ, देवता और दैत्य, शाप और वरदान सब प्रपंच हैं। अपने आपको देवता साबित किए रखने के लिए ये कथाएँ गढ़ते हैं।

शास्त्र तैयार करते। दर्शन खड़ा करते। जो दृश्य नहीं, वह असत्य है, प्रपंच है इन मूर्खों का।"

हिरण्यकशिपु के चरित्र को क्रमशः भयभीत, आतंकित, मृत्यु भय से ग्रसित और अकेला पड़ता हुआ चित्रित किया गया है। पहले अंक का विश्वास दूसरे अंक में कम हो जाता है। अपनी पत्नी द्वारा अपमानित और स्पष्टतः यह कह दिये जाने पर कि तुम्हें कोई सच नहीं बताता और 'कहाँ कहाँ' किस किस के भीतर कैसा अवाँ जल रहा है। किन किन घड़ों में बिल्ली ने बच्चे जने हैं वह घबड़ा जाता है और प्रह्लाद की माँ को अपने विपरीत पाता है। तीसरे अंक के प्रारंभ में वह संशय और अविश्वास से घिरा हुआ है। अपनी रक्षा और इच्छा के लिए वह प्रह्लाद को मरवाने का उपाय करता है। वह असफल होता है परन्तु अपनी मान्यताओं को बदलता नहीं है। अपने अतिरिक्त और किसी की सत्ता में विश्वास वह नहीं कर सकता। कोई भी तानाशाह नहीं करता है बल्कि तानाशाही का लक्षण भी है।

नाटक में जय और विजय के माध्यम से पूर्वरंग में और प्रह्लाद के माध्यम से बाद में—हिरण्यकशिपु के चरित्र को प्रतीक के रूप में ही कहा गया है। इससे पात्र की अपनी पात्रता खंडित होती है। उसकी अपनी निजता समाप्त होती है। इसलिए तानाशाही और पश्चिमी संस्कृति के भौतिकवादी दृष्टिकोण की दृष्टि से यह चरित्र प्रयोग उचित है क्योंकि उसका सारा व्यवहार और आचरण एवं उसका कथन उसी को प्रमाणित करता है। तानाशाह अपनी रक्षा के लिए और अपने अन्त के संतोष के लिए मूर्खता पूर्ण कार्य करता है यह उसके घट विवाह प्रकरण से प्रमाणित है। वह अपने को राज्य का पर्याय बना देता है। उसका आदेश देश का आदेश माना जाता है। प्रह्लाद उसको इस स्थिति का उसे स्मरण कराता है। शुक्राचार्य आदि बौद्धिक राज्यसत्ता के द्वारा खरीदे हुए हैं। अपने दायित्व को भूलकर वे तानाशाही की प्रतिष्ठा करते हैं। और अंततः हिरण्यकशिपु शुक्राचार्य की शक्ति की क्षीणता का अनुभव करता है। यद्यपि

नाटक में उन्हें वह कहीं अपमानित नहीं करता है परन्तु तीसरे अंक के प्रारम्भ में ही वह राजनर्तकी से कहता है कि 'गुरु शुक्राचार्य प्रभावहीन हो गये हैं।' इस प्रकार से तानाशाह अन्त में क्रमशः अकेले पड़ता पड़ता डर कर अपनी सुरक्षा के तर्क से किसी पर विश्वास न करने के कारण अत्यंत घेरबंदी के बावजूद वस्तुतः नंगा होता जाता है और प्रह्लाद को स्वयं मारने का निश्चय करता है और इसी क्रम में हुतासन द्वारा मारा जाता है। प्रत्यक्ष को प्रमाण मानने वाला तानाशाह जन विद्रोह को—अर्थों की आग को—नहीं देख पाता और इस प्रकार से स्मृति भ्रंश से मतिभ्रंश और मतिभ्रंश से विनाश हो जाता है। हिरण्यकशिपु आस्था और एकत्व की दृष्टि के सामने हार जाता है। साम्प्रदायिकता, वर्गभेद, शूद्र अनार्य आदि भेद विभेद, आपसी विद्वेष और फूट डालने के अस्त्र शस्त्र बेकार हो जाते हैं। हिरण्यकशिपु की प्रतीकात्मक उत्पत्ति को शून्य और अनास्था को माना गया है। इसलिए इसका विनाश भी आस्था और विश्वास से होता है।

प्रह्लाद

प्रह्लाद मूलतः कथा का नायक है। पहले अंक में प्ररोचना के अन्तर्गत उसे "सीधा सादा, साधनहीन प्रेममय। जो युद्धरत है पर घृणा नहीं जिसमें जो हिरण्यकशिपु जैसे बर्बर, निरंकुश से लड़ रहा है, स्वतंत्रता के लिए" कहा गया है। वह हिरण्यकशिपु और कयाधू का पुत्र है। वह 'ईश्वर' का भक्त, और एकत्ववादी है उसे प्रतिक्रिया में नहीं क्रिया में विश्वास है। इसीलिए हुतासन के घेर जाने पर उसे क्रिया की प्रतिक्रिया से रोकता है। वह हुतासन को बाँटकर देखने से मना करता है क्योंकि यही दृष्टियाँ तानाशाह हिरण्यकशिपु के जन्म के कारण हैं। वह हिरण्यकशिपु के बढ़ने यानी तानाशाही के विकसित होने के विषय में स्वयं ही कहता है कि हमने उसे बढ़ते हुए कहाँ देखा और उसके विकास के लक्षणों को बताता है। प्रह्लाद का विश्लेषण उसके विवेक और मूल्यबोध को प्रमाणित करता है जैसे—

"और कहाँ देखा? याद दिलाऊँ? मन में, मौन में, लालच में, भूख में—दूसरों के ऊपर अधिकार जमाने, निर्बल पर क्रोध करने···। उस क्षण में जहाँ किसी ने सोचा—मेरे अलावा कहीं कोई नहीं, कुछ भी सुंदरपूज्य, पवित्र नहीं,···नहीं नहीं, कहीं नहीं।"

प्रह्लाद देश और मातृभूमि के संकट के समय में संन्यास या पलायन का समर्थक नहीं है। वह हर तानाशाह का चाहे वह अपना पिता ही क्यों न हो विरोध करता है। प्रह्लाद अपने मित्र हुतासन से कहता है "अपनी मातृभूमि से कुछ लेना देना नहीं? एक बर्बर निरंकुश राजा के हाथ में देश को गिरवी रख कर खुद निराश जंगल चले जाना, मलकता का पौरुष?"

प्रह्लाद अपने पिता को प्रणाम करना, शिष्टाचार का पालन करना कभी नहीं भूलता है। यह शिष्टाचार और विनय उसका गुण है। शुक्राचार्य को समझाता है परंतु गुरु के प्रति सम्मान में किसी प्रकार की कमी नहीं आने देता। हुतासन से भी गुरुकुल के सम्मान की, मूल्य रक्षा के लिए कहता है। प्रह्लाद हुतासन के पशुत्व को मूल्य प्रदान करता है। नर और सिंह को जोड़ता है। वह पशुत्व को मूल्यहीनता मानता है और मनुष्य शक्ति को मूल्य शक्ति मानता है। इसीलिए प्रह्लाद के चरित्र में भारतीयता के मूल्यों की प्रतिष्ठा की गई है। वह धर्म और सत्य का प्रतिनिधि है। इसीलिए हुतासन से आत्मयुद्ध और धर्मयुद्ध की बात कहता है। प्रह्लाद की चिंता है मनुष्यत्व की रक्षा। मनुष्य को मशीन होने से बचाना, नीच ऊँच, सवर्ण शूद्र के संघर्षों और बुराइयों से देश को जो संकट में है और जिसके कारण हीनता आती है—दूर करना प्रह्लाद का लक्ष्य है और यही हुतासन को समझाता है। उसमें श्रद्धा उत्पन्न करता है, वह श्रद्धा चाहे अपनी अस्मिता से ही क्यों न हो। क्योंकि प्रह्लाद का मानना है और नाटक का संदेश भी यही है कि आस्था से ही मूल्यों की प्रतिष्ठा हो सकती है। अपने को जानने और अपने धर्म का पालन करना ही लोकतंत्र के हित में है।

प्रह्लाद का चरित्र संन्यासी और राजनेता के मिले-जुले रूप का चरित्र है जो भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है। दूसरे अंक में प्रह्लाद का उल्लेख प्रह्लाद के आत्म बलिदान के अवसर पर ही है कि तानाशाह अपने तर्कों से मारा जाता है। और प्रह्लाद की यानी लोकतंत्र की, आस्था, आस्तिकता और भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की जय होती है। नाटक में इन्हीं मूल्यों की प्रतिष्ठा होती है। परन्तु प्रह्लाद केवल इतने से संतुष्ट नहीं होता है। वह चेतावनी देता है और सावधान रहने के प्रति सतर्क भी करता है।

शुक्राचार्य

शुक्राचार्य जो गुरुकुल जैसे महत्वपूर्ण संस्थान और बौद्धिक शक्ति का प्रतीक है उसे इस नाटक में अनैतिक और उच्छृंखल सत्ता के हाथों बिका हुआ दिखाया गया है। शुक्राचार्य को बिका हुआ प्रह्लाद की माँ कयाधू और हुतासन दोनों ही कहते हैं और तीसरे अंक के अंत में तो नर्तकी द्वारा गुरु कहकर पुकारे जाने पर स्वयं शुक्राचार्य ही कहता है "मुझे गुरु मत कहो जो किसी से भी बिका हो, वह गुरु नहीं" नाटक में चरित्रों का स्थिर विभाजन रंगभूमि नाटक की विशेषता माना जा सकता है पर हर पात्र द्वारा बिके हुए पर जोर देना अभिनय की संभावना को कम करता है और नाटक में स्थापित और रूढ़ चिंतन को स्थापित करता है। शुक्राचार्य पदार्थवादी और प्रत्यक्ष को प्रमाण माननेवाले हैं। प्रह्लाद से बात करते समय तीसरे अंक में शुक्राचार्य भारत देश के अस्तित्व को भौतिक दृष्टि से अस्वीकार करता है और वर्तमान काल के पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित लोगों की तरह से किस भारत देश का प्रश्न करता है जो आधुनिकता वादियों पर व्यंग के रूप में प्रयुक्त किया गया है। शुक्राचार्य का चरित्र इस प्रकार से भारतीय दृष्टि के ठीक विपरीत आस्था हीन व्यक्तियों का प्रतीक है। वह प्रह्लाद द्वारा समझाये जाने पर कि 'जनक और विश्वामित्र की याद दिलाओ—जिन्होंने देश चित्त में व्यक्ति

रूप त्यागकर भावरूप धारण किया' शुक्राचार्य कहता है कि 'आज यह संभव नहीं'। यह कथन उसके आचरण से मिलकर बौद्धिक वर्ग की स्वार्थ-परता और क्रीतदासता को प्रमाणित करता है। शुक्राचार्य 'हिरण्यकशिपु' की अंत समय तक रक्षा करना चाहता है। वह प्रह्लाद से समझौते की पहल करता है। शुक्राचार्य ही यह प्रचार करवाता है कि 'देश का नहीं, राज्य का विश्वास करो' 'राजा ही सर्वशक्तिमान है' सुखभोग ही सत्य है प्रह्लाद कहीं नहीं है। उसको माँ उसको बिल्ली के बच्चे के रूप में मानती हैं और प्रकारान्तर से यह भी कहती है हर घर में--हृदय में प्रह्लाद जन्म ले रहा है। प्रह्लाद को एक प्रवृत्ति के रूप में मानना उसकी चारित्रिक विशेषता और भक्त प्रजावत्सलता का स्वरूप है। तीसरे अंक प्रह्लाद पुनः देश की सांस्कृतिक विशिष्टता को रूपान्तरित करता है। वह शुक्राचार्य, जो उससे समझौते की बात करने गये हैं, से बात के पूर्व की शर्त रखता है।

शुक्राचार्य : क्या यह संभव है, महाराजा और आपके बीच संधि हो सके।

प्रह्लाद : असंख्य लोग, जो हिरण्यकशिपु के बन्दीगृह में कैद है। उन्हें मुक्त किया जाए। भारत देश की परम्परा रही है, यहाँ कोई बात गुप्त रूप से नहीं होती।

शुक्राचार्य : किस भारत देश की बात कर रहे हो ? जो नहीं है; उसकी बात करने से कोई लाभ नहीं।

जय : जिसमें लाभ है, सिर्फ वही बातें की जायें।

प्रह्लाद : हर बात में हम अपने देश को याद रखेंगे।

शुक्राचार्य : कौन भारत देश ? अंग्रेजों से पहले का ? मुसलमानों से पूर्व का ?

प्रह्लाद : भारत देश, जो हमारी स्मृतियों में है। जो हमारे निश्वास-उच्छ्वास, आशा-निराशा, हार-जीत, अंधकार-प्रकाश के क्रम में बँधा है। जहाँ शक्ति कभी अकेले नहीं रही। जहाँ शक्ति और सत्ता को कभी निरंकुश नहीं होने दिया गया। जहाँ

शक्ति को कभी अकेली, एकांगी, नहीं रहने दिया। उसे सदा बाँधा है लोक से।

जाहिर है कि उपर्युक्त उद्धरणों में 'भारत देश' को प्रभुसत्ता, प्रतिष्ठा और लोकतंत्र की रक्षा को सर्वोपरि महत्व दिया गया है। प्रह्लाद हिरण्यकशिपु द्वारा चौथे अंक में यह लालच दिये जाने पर कि "अभागे! मैं तुझे अब भी अपना राजकुमार घोषित कर सकता हूँ" प्रह्लाद विचलित नहीं होता है जो चारित्रिक दृढ़ता का ही प्रमाण नहीं है बल्कि मूल्यों के प्रति निष्ठा का भी प्रमाण है। प्रह्लाद का यह कथन कि "आसुरी राजा के खिलाफ स्वराज्य के लिए मर जाना सबसे बड़ा पुण्य है।" स्वराज्य के मूल्य के रूप में स्थापित करना है जिसका इस नाटक में राजनैतिक और मूल्य परक दोनों ही अर्थ हैं।" और प्रह्लाद केवल कहता नहीं है वह कई बार स्वराज्य स्वधर्म, और अपनी आस्था के लिए मौत से लड़ चुका है। पाँचवें अंक में अन्ततः ही जीवन का लक्ष्य है। इस प्रकार से हिरण्यकशिपु की इस स्थिति का वही जिम्मेदार है। बढ़ते हुए प्रतिरोध और भय से राजा भी उस पर अविश्वास करता है और अन्त तक वह प्रजा के साथ नहीं हो पाता है। नाटक के अन्त तक शुक्राचार्य महज 'तटस्थता' की स्थिति में यानी सुविधा की स्थिति बनाये रखता है, जो बौद्धिक वर्ग की वर्तमान स्थिति का प्रतीक है।

हुतासन

'हुतासन' नाटक में पहले अंक से अंतिम अंक तक वर्तमान रहता है। परन्तु उसका अपनी ताकत या शक्ति प्रह्लाद के संस्कारों से आती है। मूल पौराणिक कथा के 'नृसिंह' को इस नाटक में मानव बुद्धि के दायरे मे लाकर औचित्य परक सिद्ध किया गया। पौराणिक कथा वर्तमान के संदर्भ में नितांत आधुनिक दिखायी पड़ने पर नृसिंह के नरसिंहत्व संस्करण के इसी रूप में संभव थी। हुतासन शुक्राचार्य के गुरुकुल में प्रह्लाद का सहपाठी और मित्र था। हिरण्यकशिपु के अत्याचार के कारण वह जंगल में

चला गया था। प्रह्लाद के द्वारा नगर में लाये जाने पर प्रह्लाद के साथ से उसका पशुत्व सिंहत्व में बदलता है। हुतासन, दलितों, अनार्यों और शूद्रों का प्रतिनिधि प्रतीत होता है। पहले अंक में कयाधू द्वारा हिरण्याक्ष की वाराह द्वारा मृत्यु की सूचना मिलने पर वह स्वयं भी वाराह बनकर हिरण्यकशिपु की हत्या करना चाहता है। परन्तु प्रह्लाद द्वारा बार-बार सिंहत्व की स्मृति दिलाये जाने पर देश और मातृ भूमि के प्रति उत्तर-दायित्व की प्रतीति होने पर वह नरसिंह हो जाता है। गुरु शुक्राचार्य के गुरुकुल में उनके पदस्खलन के कारण हुतासन आग लगा चुका है। वह प्रह्लाद से कहता भी है कि ऐसे बिके हुए गुरुकुल में आग लगाकर उसने ठीक ही किया। हुतासन की चिंता यही है कि अपनापन कहाँ है। हुतासन का यह प्रश्न अपनी बोली भाषा पहनावा और संस्कृति के बारे में है और दलितों तथा अनार्यों की दृष्टि से ही नहीं बल्कि राष्ट्रीय दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। हुतासन हर समस्या को प्रजा की दृष्टि से देखता है और कहता है कि यथा प्रजा तथा राजा क्यों नहीं। प्रह्लाद कहता है कि "मैं तुम्हें जंगल से पकड़ कर इसीलिए यहाँ लाया कि, तुम यहाँ प्रश्न करो। मुझसे स्वयं से,—सबसे—हवा से, चिड़ियों से। हुतासन अपने को 'शूद्र-अनार्य' कहता है और यह भी कहता है कि मेरा निवास जंगल है और यह भी कहता है कि यहाँ रहने पर वह पशुवत हत्यायें ही करेगा। परंतु हुतासन को यह पता है कि तानाशाही प्रकृति विचारशून्यता से पैदा होती है। हुतासन को नगर की संस्कृति अच्छी नहीं लगती है। अभिज्ञान शाकुंतल के शारद्वत की तरह नगरीय संस्कृति में विकार ही नजर आते हैं जो पशुत्व की यानी हिंसा की वृद्धि करते हैं। हुतासन को 'क्रूरता से ही सत्य की दिशा दिखायी पड़ती है। प्रह्लाद हुतासन में आत्मबल और साहस भरता है। उसकी हीनता ग्रन्थि को दूर करता है। उसके दूर होते ही हुतासन में सिंहत्व जाग्रत होता है।

हुतासन की एक ही इच्छा है 'हिरण्यकशिपु का विनाश'। प्रह्लाद द्वारा उसकी शक्ति का और उसकी अबध्यता के विषय में समझाए जाने

पर हुतासन कहता है कि 'यह सब झूठ है। उसमें इतनी शक्ति नहीं। ये कुप्रचम्'। हुतासन के चरित्र को दलितों और शोषितों की संगठित शक्ति के प्रतीक के रूप में पहले ही अंक में प्रस्तुत किया गया है वह जिस प्रकार दलितों द्वारा राज्य पर आधिपत्य का उद्घोष करता है वह वर्ग संघर्ष की भी याद दिलाता है।

दूसरे और तीसरे अंक में हुतासन मंच पर नहीं आता है। चौथे और पाँचवें अंक में कथा मूलत: उसी के चारों ओर घूमती है। चौथे अंक का हुतासन दूसरे अंक के हुतासन से बदला हुआ है। वह हिरण्यकशिपु से कहता है कि "मैं मनुष्य नहीं जंगल पशु। जानते हो पशु क्या होता। वह अपनी आजादी के लिए कहाँ रहता है ?—तूने अपने विरोधियों की हत्या कर हिंसा और दमन का जो नृत्य शुरू किया वहाँ मनुष्य बने रहना असंभव था।" हिरण्यकशिपु हुतासन को ऊंचे से ऊँचे पद की लालच देता है तो हुतासन यही कहता है कि तेरे राज्य पर थूकता हूँ। हुतासन और हिरण्यकशिपु का निम्नलिखित संवाद हुतासन की मूल्य चिंता और चारित्रिक दृढ़ता को व्यक्त करता है और लोकतन्त्र के लिए तानाशाह की समाप्ति के औचित्य पर बल देता है।

हुतासन : तूने देश-समाज के मूल्यों की हत्या कर सबको भ्रष्ट, लालची, विलासी और कायर बना दिया।

हिरण्य : पिछड़े देश का कोई मूल्य नहीं था। लोकतन्त्र मनुष्य राज्य नहीं।

हुतासन : मनुष्य की तरह है। जैसे मनुष्य में उसकी आत्मा होती है, वैसे ही लोकतन्त्र में उसका मूल्य होता है। जैसे आत्मा हर शरीर के साथ नहीं होती, उसे अर्जित करना होता है, अपने कर्मों से, विश्वासों से। उसी तरह लोकतन्त्र के मूल्य भी पैदा करने होते हैं।

हिरण्यकशिपु हुतासन को प्रह्लाद की हत्या के लिए प्रधान मन्त्री पद की लालच देता है। नरसिंह हुतासन हिरण्यकशिपु की योजना को अपने

लक्ष्य के निमित्त स्वीकार कर लेता है। प्रह्लाद उसकी योजना से अवगत है। वह भी उसे तैयारी करने को कहता है और पाँचवें अंक में हुतासन नरसिंह के रूप में खंभे से प्रकट होकर राग द्वेष रहित होकर एक महान कर्म की तरह से हिरण्यकशिपु की हत्या करता है।

नाटक की इस पात्र कल्पना से द्वन्द्व और संघर्ष का जो आधार बनाया गया है, उसमें तानाशाही बनाम लोकतंत्र की द्विभाजिकता का स्पष्ट प्रयोग है। अंतर केवल इतना है कि नाटक की समाप्ति पर तानाशाह को छोड़ कर सभी लोकतंत्र और आस्थावादी मूल्य दृष्टि के समर्थक हो जाते हैं। कुछ पात्रों को पदार्थवादी और सुखोपभोगवादी संस्कृति का प्रतिनिधि दिखाकर नाटककार ने जयशंकर प्रसाद की कामायनी की तरह से इस प्रकार की संस्कृति का विनाश ही दिखाया है इसलिए पात्रों के चरित्रों में इस प्रकार के संकेतों का प्रयोग किया गया है। नाटक की पात्र योजना मूल उद्देश्य की दृष्टि से सफल है और उपयुक्त है। कुछ चरित्रों में अतिनाटकीयता यदि है भी तो वास्तविकता और विश्वसनीयता पैदा करने के तर्क से ही है।

नाट्कला और मूल्यांकन

'नरसिंह कथा' रंगभूमि नाटक है। लेखक के अनुसार "प्रत्यक्ष देखा, रंग, मंच पर नहीं होता। मंच पर रंग (और भारतवर्ष का रंग धर्म है) लीपा पोता जाता है। रंगभूमि की ही प्रकृति है। भूमि ही रंग है। तभी तो कोई निर्माण कर्म शुरू करने से पहले हमारे यहाँ भूमि पूजन अनिवार्य है। हमारे ही पुरखों ने सुबह उठते हुए भूमि को पाँव से छूने की क्षमा प्रार्थना की है। यही जीवन दृष्टि हमारी रंग दृष्टि है। जहाँ कथा श्रद्धा है, विश्वास पात्र है, वही हमारा लोकचित्त है। रंगभूमि पर खेले गये 'नरसिंह कथा' का सम्प्रेषण सार्वजनिक और सामाजिक होगा, यह सर्वजन और समाज के लिए है, केवल व्यक्ति के लिए नहीं, इसे हर क्षण निदेशक अभिनेता को याद रखना होगा। ड्रामा-थियेटर, दूरदर्शन, फिल्म की

"अपील" "प्राइवेट" है ठीक इनके विपरीत नरसिंह कथा का सम्प्रेषण सार्वजनिक सामाजिक है। यह नाटक कथा के माध्यम से सम्प्रेषण के लोक धर्मीस्वरूप को ही नहीं बल्कि रंगमंचीय स्वरूप की भी मान्यता है। भूमि में रंग की प्रतिष्ठा का आध्यात्मिक अर्थ देह में आत्मा की कल्पना है और यह प्रतिष्ठा नाटक में स्थान-स्थान पर है। नाटक की पूरी संरचना में जिस प्रकार के रंगमंच की कल्पना की गई है उसमें कथा के तर्क से दर्शक और रंगमंच में अलगाव की अपेक्षा ही नहीं है। इसीलिए नाटककार 'भूमि' शब्द का प्रयोग करता है जहाँ पुरा नाटक एक प्रकार की संरचनात्मक अन्विति है। निदेशक, अभिनेता, लेखक, प्राश्निक और प्रेक्षक सभी एक साथ शामिल हैं। नाटक का प्रारम्भ लोकनाट्यों की तरह 'रंगभूमि' के मध्य में रखे हुए नगाड़े की ध्वनि से होता है। नगाड़ा सार्वजनिक समारोहों और उत्सवों का वाद्य है और जातीय स्मृति का प्रतीक है। नाटक की शुरुआत नाट्य शास्त्र के नियमों की तरह से बहुत कुछ कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तल' की तरह होती है। पूर्वरंग के विधानों में से कुछ का पालन किया गया है। कल से कम आश्रावणा 'प्रस्तावना' और 'प्ररोचना' का। जय और विजय को लेखक ने नट और नटी के रूप ही नहीं बल्कि प्रह्लाद के मित्र और साथी के रूप में भी किया है। पहले अंक की 'प्ररोचना' में ही नाटककार ने कथा के प्रतीकार्थ को स्पष्ट कर दिया है। जय और विजय की भाषा में एक प्रकार के स्तरात्मक संकेतों का प्रयोग किया गया है जो उनके नट-नटीत्व को प्रमाणित करता है जैसे—

जय : हमें झटपट रूप बदलना होगा।

विजय : झटपट और बिना कोई खटपट।

विजय : उधर मत देख।

जय : हाय क्या मुद्रा है।

नाटककार ने इस नाटक में भाषा की मानकता को बनाये रखते हुए उसके भीतर ही छवियों और स्तरों को पैदा करने की कोशिश की है,

जिससे पात्रों की वास्तविकता उनकी सम्पूर्णता में अभिव्यक्त हो पायी है। नाटक में स्थल-स्थल पर सार्थक रंगमंचीय संकेत हैं और प्रकाशवृत्त का प्रयोग भी किया गया है। अनुभवी नाटककार ने संवादों को सार्थक और लघु रखा है, जिससे कथ्य की गरिमा अभी बनी रहती है और दर्शक ऊबता नहीं है। मूल पात्रों के रंगमंच पर उपस्थिति तक कथा प्रसंग और व्याख्याओं की आवश्यकता तक पात्र आते हैं और चले जाते हैं जैसे पहले अंक में नर्तकी और वज्रदंत। परन्तु कथा का प्रसंग और नया प्रकरण उपस्थित होने पर दृश्य परिवर्तन किया गया है जैसे हुतासन प्रह्लाद के प्रसंग में। पहले अंक के दूसरे दृश्य में कथा के बीज की स्थापना की दृष्टि से हुतासन और प्रह्लाद का प्रसंग अनिवार्य है। इन्हीं दोनों के द्वारा तानाशाही और लोकतंत्र की या अधर्म और धर्म की द्विभाजिकताएँ खड़ी की जाती हैं और युद्ध को धर्म युद्ध में बदला जाता है। इसी अंक में ही श्रद्धा और विश्वास का प्रश्न उठाया जाता है जो सामाजिकों पर यह प्रभाव उत्पन्न करता है कि श्रद्धा और विश्वास के बिना धर्मयुद्ध नहीं हो सकता है और इसी अंक के अन्त में यह भी निर्धारित होता है कि लोकतंत्र न्याय, धर्म और भारतीय संस्कृति की स्थापना के लिए हिरण्यकशिपु की मृत्यु आवश्यक है।

नाटक में कथा का विकास पात्रों के संस्कार और घटनाओं की दृष्टि से दूसरे और तीसरे अंकों में तेजी से होता है। इन अंकों में हिरण्यकशिपु का अत्याचार और पागलपन बढ़ता जाता है, वह सांस्कृतिक मर्यादा का उल्लंघन करता है और धीरे-धीरे उसके सभी मित्र, कलत्र उसे अपने शत्रु प्रतीत होते हैं। वह अपने मूल से कट जाता है और आयातित पदार्थवादी विचारों में फंसता जाता है। दूसरे, तीसरे अंकों में घटनाएं और संवाद दोहरी अर्थ चेतना को स्थापित करते हैं। तानाशाही किसे कहते हैं और यह क्यों और कैसे पनपती और बढ़ती है, इसके साथी कौन से लोग हैं यह इन अंकों में दिखाया गया है। यह अवश्य है कि एक ही तथ्य की स्थापना के लिए बातों को दुहराया अधिक गया है।

नाटक की रचना में लेखक ने 'भारत देश' की रक्षा को सर्वोपरि मूल्य के रूप में नहीं माना है बल्कि लोकतन्त्र और धर्म को माना है। नाटककार ने संवादों के नियोजन और चरित्रों की टकराहट से यह कोशिश की है कि कथा को एक प्रकार का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य देकर उसे वर्तमान की प्रमुख समस्या से जोड़ दे। इसीलिए उसने हुतासन को शूद्र दलित और अनार्य संस्कृति का प्रतिनिधि भी स्वीकार किया है। राष्ट्र के संकट का हल इस प्रकार के भेद बुद्धि से मुक्त होना ही है।

नाटक का दूसरा पहलू पदार्थवादी और आध्यात्मिक दृष्टियों की टकराहट का है। नाटक में स्थल-स्थल पर हिरण्यकशिपु और शुक्राचार्य के द्वारा इस प्रकार शब्दों और पदबंधों का प्रयोग किया गया है, जिसे प्रह्लाद हेय और घातक मानता है और प्रह्लाद ही वांछनीय है। इससे पश्चिम और पूरब के द्वन्द्व के रूप में भी माना जा सकता है। प्रह्लाद मूल से कटने और बाँट कर देखने को हानिकारक मानता है।

नाटक में इस प्रकार के सभी मूल्यों और दृष्टियों का नियोजन अंतिम अंक में होता है। नाटक का अंत भारतीय नाट्य नियमों के अनुसार सत्य और धर्म की जय से ही हुआ और अंत में भरत वाक्य की तरह एक गीत का प्रयोग किया भी गया है। नाटक में निरर्थक प्रयोग को नहीं रखा गया है। एक ही मंच पर दृश्य परिवर्तन करके यह नाटक आसानी से खेला जा सकता है और चूँकि कथा पौराणिक है इसलिए कथा के माध्यम से सम्प्रेषण में सुविधा होती है। सामाजिक को अर्थग्रहण और रस ग्रहण में कठिनाई नहीं होती है। लोक वेद और अध्यात्म को नाट्यशास्त्र के ३६वें अध्याय के ६१वें श्लोक में प्रमाण माना गया है। डॉ० लाल ने इस नाटक में तीनों आधारों का प्रयोग किया है। नाटककार ने आचार्य भरत की तरह ही लोकभूमि पर जोर दिया है। भरत ने २६वें अध्याय में बारबार लोक को ही प्रमाण माना है। लोक की प्रवृत्ति नाना शीलवती है और नाटक शील में ही प्रतिष्ठित है इसलिए भरत ने कहा है कि—

तस्माद्गम्भीरार्थाः शब्दा ये लोक वेद संसिद्धाः
सर्व जनेन ग्राह्यस्यते योज्या नाटके विधिवत

२७।४५।

डॉ० लाल जिसे रंगभूमि कहते हैं वह यही है। इस नाटक में कथा प्रवाह के मध्य से भारतीय परम्परा के अनुसार ही वर्तमान समस्या को मानवीय समस्या के रूप में प्रस्तुत किया गया है इसलिए नाटक महत्वपूर्ण हो गया है।

नाटक में कथा के प्रतीकात्मक स्वरूप का बार-बार स्पष्टीकरण नाटक में एक दोष उत्पन्न करता है। संवादों से नाटक का अर्थ स्वतः प्रकाशित होता है। अभिनय अर्थों को प्रकाशित करता है। इसलिये इसकी कोई आवश्यकता नहीं थी कि प्रारम्भ में ही कथा को प्रतीकित कर दिया जाय। यदि इसे प्रयोग माना भी जाय तो अन्ततः यह पात्रों को अजनबीकृत करता है। यह सही है कि नाटक में उद्देश्य का स्पष्ट उल्लेख भारतीय परम्परा की दृष्टि से उचित ही है। स्वयं कालिदास ने अपने नाटकों में एक आध्यात्मिक अर्थ रखा है परन्तु वह अर्थ झलकता है प्रमुख नहीं होता है। शुक्राचार्य का उपयोग जिस संदर्भ में किया गया है वह भी एकरसता का कारण बनता है और पूर्ण रूपेण आधुनिक संदर्भ में असंस्थानीकरण या संस्कृति भ्रष्टता को उजागर नहीं कर पाता है। नाटककार जब स्वयं यांत्रिकता के खिलाफ है और आर्य अनार्य या साम्प्रदायिक विद्वेष को तानाशाही का कारण मानता है तो कम से कम नाटक की संरचना में इन तत्वों को स्पष्ट नहीं दिखायी पड़ना चाहिए। शुक्राचार्य को महज यांत्रिक बनाया गया है। और पदार्थवादिता के जिस तेवर या तर्क की आवश्यकता थी वह भी उसमें नहीं है इसके अतिरिक्त भारत देश का जो स्वरूप प्रह्लाद प्रस्तुत करता है उसमें समग्र भारत का बिम्ब नहीं उभरता है। उसमें अनार्य या शूद्र या दलितों के प्रतीक का ही पुरुष या मूल्य पुरुष के रूप में उल्लेख होना चाहिए केवल हिन्दुत्व की ही बू नहीं आनी चाहिए। नाटक की चिंता में समग्रता भी चाहिए। यद्यपि पौराणिकता का निर्वाह इस

प्रकार की रचना बाधा बनता है परन्तु उसे अन्य रूप में रखा जा सकता था। हुतासन और प्रह्लाद की मित्रता समन्वयात्मक दृष्टि का परिणाम है। नाटक, संतुलन पर समाप्त होता है। परन्तु प्रह्लाद अन्त में एक प्रकार की संभावना व्यक्त करके उसमें प्रश्नाकुलता पैदा कर देता है, जो एक प्रकार से 'प्रभाव परिवर्तन' की कोशिश है। इसे 'एलियनेशन इफेक्ट' भी कहा जा सकता है। परम्परागत दृष्टि से नाटक में देश काल की समस्या नहीं है क्योंकि नाटक वर्तमान में प्रतिष्ठित है परन्तु उसका अर्थ व्यापक है। नाटक में चरम सीमा का प्रयोग है और कथा का एक निश्चित विकास भी है।

इस विकास क्रम को भारतीय दृष्टि से ही समझा जा सकता है। नाट्यशास्त्र में 'फलागम' का व्यापक अर्थ है वह केवल नायक की सफलता या विजय नहीं है बल्कि प्रभाव, लक्ष्य प्राप्ति, मूल्य प्रतिष्ठा, सामाजिक दृष्टिकोण का परिवर्तन और आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति आदि का समग्र अर्थ उसमें सम्मिलित है। इस दृष्टि से नरसिंह कथा निश्चय ही सफल है क्योंकि इसमें 'फलागम' है। पश्चिमी नाटक में 'फलागम' की अवधारणा नहीं है। नाटक एक प्रकार का यज्ञ माना गया है। डॉ० लाल ने भूमिका में कुछ उसी भाव से नाटक के सम्बन्ध में लिखा है। यह नाटक मनोरंजन के लिए नहीं है और न विवेचन के लिए है बल्कि सांस्कृतिक पुनर्जागरण के लिए है।

•